जमाल दोहावली

अकबर कालीन मुस्लिम कवि जमालुद्दीन के नीति, भक्ति तथा
कूट संबंधी दोहों का, काव्य रसिकों के हेतु,
अपूर्व सटीक संग्रह

महावीरसिंह गहलोत
एम. ए.
रिसर्च स्कॉलर

पुस्तक-भवन,
काशी ।

प्राक्कथन

हस्त लिखित पुस्तकों की खोज करते समय जोधपुर में एक पृष्ठ जमाल के गूढ़ दोहों का भी हाथ लगा। जमाल से परिचित तो था ही, पर अब जमाल के संबंध में जानने की अधिक जिज्ञासा उत्पन्न हुई। फिर जब सूर-साहित्य में कूट काव्य के वर्गीकरण पर अध्ययन करने लगा तब जमाल को समझने का प्रयास करना ही पड़ा। बहुत सर मारने पर भी जमाल के काव्य का यथार्थ बोध न हो सका। हिन्दी साहित्य की इस कूट शैली को लुप्त होते देख दुःख सा होने लगा। सरदार कवि ने सूर की "साहित्य-लहरी" की टीका न करदी होती तो वह भी आज अपना आकर्षण बहुत कुछ खो बैठती। अस्तु, जमाल के दोहों का अर्थ लगाने की ठानी।

तीन वर्षों तक लगातार जमाल की पोथी साथ रही। जहाँ कहीं भी जाता विद्वानों की सेवा में जमाल के दोहों को प्रस्तुत करता। दोहों के अर्थ और उनके गूढ़ार्थ पर बहुत विचार विमर्श हुआ, और अन्त में अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार उनको सटीक प्रकट करने का साहस किया। फिर भी कुछ दोहों का अर्थ सन्तोषप्रद न लग सका, इसलिए उन्हें परिशिष्ट में बिना अर्थ के ही दे दिया। आशा है उनकी भी टीका अगले संस्करण में हो सकेगी।

मैं उन सभी लेखकों तथा सम्पादकों का आभारी हूँ, जिनकी रचनाओं से जमाल-विषयक सामग्री उपलब्ध हुई है। जिन विद्वानों ने समय समय पर जमाल के दोहों

कृपा न होती तो जमाल के काव्य का तत्त्व-बोध नहीं हो पाता। रीतिकालीन साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् पंडित विश्वनाथ प्रसादजी मिश्र एम. ए. (हिंदू विश्वविद्यालय, काशी) ने अनेक दोहों के अर्थ लगाने में बहुत सहायता दी है। विशेषकर बहिर्लापिका का और चित्र-लिपि का पूरा रहस्य आपसे ही खुला। इसके लिए आपको धन्यवाद देकर मैं धृष्ट नहीं बनना चाहता; शिष्य के नाते आपका चिर आभारी तो हूँ ही।

हिंदी के जिस प्रकाण्ड विद्वान् से इसके संपादन में विशेष सहायता मिली है, उसके नामोल्लेख की अनुमति नहीं, अतः उनका ऋण शब्दों में भी नहीं चुक सकता। भाई श्री भगवती शरणसिंह जी बी. ए., एल. एल. बी. ने समय समय पर जो उत्साह दिलाया है, वह सदैव स्मरण रहेगा। आपकी कृपा के लिए तो इस समय केवल धन्यवाद ही है। बन्धुवर श्री उदयशंकर त्रिवेदी शास्त्री (भारतकला भवन, काशी) से पुस्तक के मुद्रण में बहुत सुविधा प्राप्त हुई है; प्रेस-संबंधी बातचीत तथा छपाई की देखरेख का बोझा हलका हो गया। आपसे कई सुझाव भी प्राप्त हुए। शाब्दिक सहानुभूति के आप प्रबल विरोधी ठहरे! इसलिए अधिक क्या लिखूँ?

"जमाल-दोहावली" से यदि हिन्दी साहित्य की नष्ट होती हुई कूट परम्परा का संरक्षण हो सका और इससे यदि इस उपेक्षित कवि को कुछ महत्त्व मिला तो मैं अपना श्रम सफल समझूँगा, अन्यथा बालपन तो बाँटे में ही पड़ा है।

३१ मई, सन् १९४५ ई०
जोधपुर

महावीरसिंह गहलोत

भूमिका

कूट-दोहाकार जमाल हिन्दी के प्रसिद्ध कवि हो गए हैं। किन्तु कुछ दोहों के अतिरिक्त अभी तक उनकी जीवनी या किसी अन्य रचना का ठीक ठीक पता नहीं लगा है। हिन्दी में जमालुद्दीन नाम के कई कवि मिलते हैं और हमारे कूट-दोहाकार जमाल का भी पूरा नाम जमालुद्दीन ही हो तो आश्चर्य नहीं। पर हैं वे जमाल के नाम से ही प्रसिद्ध। स्व० राधा-कृष्णदासजी ने सूरसागर की भूमिका में सूरदास के समकालीन कवियों में जमाल और जमालुद्दीन नामक दो कवियों का उल्लेख अलग अलग किया है। उनमें जमाल तो हमारे कूट-दोहाकार जमाल ही हैं किन्तु दूसरे जमा-लुद्दीन सम्भव है शिवकानपुर के क़ाज़ी जमालुद्दीन हों जो अकबर काल के हिन्दी कवि हैं।* इनके अतिरिक्त कई जमालुद्दीन हो गए हैं, पर वे किस काल में हुए और उन्हों ने क्या क्या किया इसकी चर्चा यहाँ नहीं की जा सकती।

समय

शिवसिंह सरोजकार ने जमाल का जन्मकाल सं० १६०२ वि० दिया है, और यही संवत् मिश्रबन्धुओं को भी मान्य है। हाँ, कविताकाल उन्होंने सं० १६२७ वि० माना है। इनके अतिरिक्त स्वय कवि का दोहा है, जो उसके अकबर कालीन होने का प्रमाण है (देखिए दोहा ३३१)। काशी के प्रसिद्ध कलाविद् श्री रायकृष्णदासजी ने हमें अकबर और जमाल की भेंट सम्बन्धी एक दन्त-

---

* Al-Badaoni mentions, "one qauzi Jamal by name, a Hindi poet of Sivakanpur one of the dependencies of Kalpi", in "Muntakhab-ut-Tawarikh" (vol. 2. PP. 119. Calcutta 1884) मुंताखबुत्तवारीख का यह उल्लेख श्री राय कृष्णदास जी की कृपा से ज्ञात हुआ।

ा भी बताई है (देखिए पृ० ५६) रीतिकालीन साहित्य के प्रसिद्ध
द्वान् पं० विश्वनाथप्रसादजी मिश्र को दीनदयाल गिरि के प्रशिष्य से ज्ञात
ग्रा कि जमाल रहीम के पुत्र हैं। जो हो, इन दन्तकथाओं से इतना तो
ष्ट है कि जमाल बादशाह अकबर के समकालीन थे।

जमाल को सभी लोग प्रायः मुसलमान मानते हैं और उनका नाम
इसी बात का द्योतक है। परन्तु एक दूसरा पक्ष भी है जो इन्हें बन्दीजन
(भाट) समझता है। 'राजउपाध्या' ग्यावाले श्री पन्ना
भैया को कोई भानु कवि काशी में मिले थे। जो वीर रस
की सुन्दर कविता करते थे। उनका सत्कार पन्ना भैया
२५ मुद्रा और एक दुशाले की जोड़ी देकर किया। उनसे जमाल के
दोहों को सुनकर उन्हें लिपिबद्ध कर लिया। भानु कवि ने अपने आपको
जमाल का वंशज कहा और पन्ना भैया ने उनके कथानुसार जमाल की
जीवनी इस प्रकार दी—"यह महाशय सन् १६०२ ईस्वी में उत्पन्न हुए
और सन् १६६२ ईस्वी में इनकी मृत्यु हुई। यह जात के बन्दीजन थे
उनके पिता का नाम अवध कवि था ये तीन भाई थे तीनों बड़े धुरन्धर कवि
इनमें से सबसे बड़े लाल कवि बाद जमाल कवि इनके बाद देव या
देव कवि थे। लाल कवि का चित्रकाव्य अत्यन्त प्रसन्सनीय था और उक्त
तीनों भाई श्रृङ्गार-रस के पूर्ण ग्याता थे इनकी जन्मभूमि देवली ग्राम उदै-
र राज्य में थी और राज दर्बार में इनकी बड़ी कदर थी अपने केवल
श्रृङ्ग कूट दोहों से महाराज को अति प्रसन्न रखते थे कि जिसके फल से दर्बार
 उक्त कवि को अत्यन्त दर्ब प्राप्त हुई और जलपुर नाम ग्राम इन्हें मिली
तो कवि महाशय ने जलपुर से जमालपुर नाम रक्खा जो आज तक
विद्यमान है।"

उपर्युक्त वृत्तान्त में कुछ सन्देह होता है, क्योंकि आश्रित कवि जमाल
का कोई ऐसा सूत्र प्राप्त नहीं होता। उधर हम देखते हैं कि स्वयं कवि
अपनी 'गोर' (कब्र) बनाने की चर्चा करता है—

करज्यो गोर जमाल की, नगर कूप के माँय।
मृग-नैनी चपला फिरैं, पड़ैं कुचन की छाँय ॥ ३३१ ॥

इससे ज्ञात होता है कि कवि मुसलमान है। इसके अतिरिक्त कवि स्थान स्थान पर हिंदू सती (दोहा २२) और हिंदू माता की ममता (दोहा २५) को सराहता है जो कि सूफियों के लिए सदा आकर्षक रहा है। मनीषी समर्थदान भी आपको मुसलमान ही मानते हैं। इस दशा में जमाल को हिंदू बन्दीजन (भाट) मानना दुराग्रह मात्र होगा।

जमाल के दोहों का पहला संस्करण राजस्थान से निकला। फिर राजस्थान निवासी भानु कवि से पन्ना भैया को जमाल के दोहे प्राप्त हुए और फिर प्रो० नरोत्तमदास जी स्वामी एम. ए (बीकानेर निवासी) ने कुछ दोहों का संग्रह प्रकाशित किया। इस प्रकार जमाल के राजस्थान में अधिक लोकप्रिय होने तथा उनके दोहों में राजस्थानी भाषा का पुट होने से सहज में ही धारणा बन सकती है कि जमाल राजस्थानी थे? ऐसा अनुमान प्रो० स्वामी ने किया भी है—"राजस्थान में इस कवि के 'दूहों' का इतना अधिक प्रचार है कि उसका राजस्थानी होना बहुत सम्भव है (हिन्दुस्तानी पत्रिका पृ० ४३८)" किन्तु मनीषी समर्थदान ने कवि को पिहानी निवासी माना है और यही मत ठीक भी जान पड़ता है। कारण कि स्वयं कवि ने अपने एक दोहे में गोमती नदी का स्पष्ट उल्लेख किया है—

स्थान

गलिन गलिन गटकि गइ, गति गोमती की आज।
बिकल लोग यह तिय खुशी, कह जमाल किहि काज ॥१९-॥

पिहानी (जिला हरदोई में) गोमती तट पर ही बसा है और इनकी रचना का रंगढंग भी इनको युक्तप्रान्त का ही बताता है। अतः जब तक इसके विरुद्ध कोई विशेष प्रमाण हमें न मिले तब तक यही मत साधु समझना चाहिए।

जमाल के अभी तक दोहे ही मिले हैं। खोज रिपोर्ट (सन् १९१२-१३-१४ ई०) में (पृ० ११३ पर) "जमाल-पच्चीसी" का उल्लेख है जो कि दोहों का संग्रह मात्र है, कोई स्वतंत्र रचना नहीं।

रचनाएँ खोज रिपोर्ट (वही) में जमाल कृत "भक्तमाल की टिप्पणी" का भी उल्लेख है। परन्तु यह विवरण भी सन्देहजनक जान पड़ता है क्योंकि रिपोर्ट के छपे अवतरणों से ज्ञात होता है कि गद्य और पद्य में लिखित इस ग्रंथ में जमाल का एक दोहा (प्रस्तुत संग्रह का ४६ वाँ दोहा) देखकर ही अन्वेषक ने चट इसे जमाल कृत लिख दिया। पर यह ध्यान नहीं दिया कि इसी दोहे के ऊपर वाला दो बिहारी का है। प्रतीत होता है कि किसी भावुक ने इस भक्तवार्ता की रचना की, और बीच बीच में उसमें अन्य कवियों के दोहे भी जोड़ दिये।

खोज रिपोर्ट (सन् १९२०-२३) में (पृ० २५१ पर) "संवत् १८३९ मिती पूस सुदी १२ को लिखी" हुई जमाल के स्फूट दोहों की एक प्रति का उल्लेख है। इस प्रति में कुल १२२ दोहे हैं। अन्वेषक ने रिपोर्ट के अवतरण में ११ दोहों को उद्धृत किया है, जिनमें से केवल एक में जमाल की छाप है। बाकी दो दोहे मतिराम के, एक दोहा तुलसी का, एक दोहा बिहारी का और शेष छ दोहे बिना छाप के अज्ञात कवियों के हैं। इस दशा में इन दोहों के स्फुट संग्रह को जमालकृत मानना ठीक नहीं। फिर भी जानकारी के लिए शेष दोहों को हमने परिशिष्ट २ में दे दिया है।

भावनगर निवासी स्व. कवि गोविन्द गीला भाई ने जमाल का एक छप्पय (संख्या ३७८ पृ० ६६) भी माना है, पर छप्पय की भाषा तथा भाव-व्यञ्जना की शैली हमारे कूट दोहाकार कवि से भिन्न है। सम्भव है छप्पयकार कोई अन्य जमाल कवि हो। श्री गंगा प्रसाद जी अखौरी ने अपनी पुस्तक "हिन्दी के मुसलमान कवि" में जमाल के दो सोरठे भी दिये हैं, पर जमाल छाप न होने से वे संदिग्ध हैं।

सरोजकार शिवसिंह के बाद जमाल के दोहों का संग्रह मुम्बई निवासी कान्ह जी धर्मसिंह ने "साहित्य संग्रह" नामक पुस्तक में किया। इसके

इसके पश्चात् ८३ दोहों का एक संग्रह मनीषी समर्थदान

संपादन सामग्री को मिला। उसमें उन्होंने दोहासार (ह० लि० संग्रह) और शिवसिंह सरोज के २ दोहे तथा स्व. गोविन्द गीला भाई से प्राप्त ४ दोहों को जोड़कर एक संग्रह प्रस्तुत किया। दस वर्ष तक लगातार श्रम करने पर भी कुछ और सामग्री न मिली तब उन्होंने कुल ९२ दोहों का संग्रह "जमाल कृत दोहे" के नाम से अजमेर से संवत १९६३ वि० में प्रकाशित किया। समर्थदान जी ने पाद टिप्पणी में एकाध स्थान पर कुछ दोहों के अर्थ लगाने की चेष्टा भी की है।

इसके पश्चात् पन्ना भैया ने भानु कवि से प्राप्त दोहों, कुछ अपने आश्रित कवियों से प्राप्त दोहों तथा शिवसिंह सरोज से कुछ दोहों को लेकर एक १८० दोहों का संग्रह तैयार किया, किंतु इनमें से केवल १०८ दोहे को "जमाल-माला" के नाम से सन् १९१५ ईस्वी में काशी से प्रकाशित किया। जिसमें प्रत्येक दोहे पर आपने अपनी कुंडलिया भी लगा दी। दोहे के अर्थ की अपेक्षा उनका ध्यान अनुप्रास की छटा पर ही अधिक रहा है। पन्ना भैया की टीका करने की इच्छा पूरी नहीं हुई।

जमाल के दोहों को प्रकाशित करने का तीसरा प्रयास श्री अखौरीजी ने किया। अपनी पुस्तक "हिन्दी के मुसलमान कवि" में आपने कुछ नवी दोहों के अतिरिक्त अनजान में बिहारी आदि कवियों के दोहे भी भर दि हैं। इसके पश्चात् प्रो. नरोत्तमदासजी स्वामी एम. ए ने "हिंदुस्तानी पत्रिका में "जमाल के दोहे" नामक एक लेख लिखा, जिसमें आपने ७२ दो प्रकाशित किए। इस संग्रह की बड़ी विशेषता यह है कि नीति, भक्ति त विरह संबंधी दोहों का विभाजन कर आपने उनका अर्थ भी दे दिया है औ साथ ही कहीं कहीं कूट दोहों को स्पष्ट करने का प्रयत्न भी किया है।

इन उपर्युक्त सभी संग्रहों में जमाल छाप रहित दोहे भी पाये जाते

हमने उनको परिशिष्ट २ में दे दिया है और विषयानुसार दोहों को विभाजन कर उन्हें शीर्षकों में नहीं बाँटा है। प्रकाशित दोहों के अतिरिक्त खोज रिपोर्ट और निजी संग्रह के दोहे भी इस संग्रह में संगृहीत हैं। कोई प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति प्राप्त न होने के कारण पाठ में हेर फेर करने की मनमानी चिन्ता नहीं की है। जितने भी संगत पाठ मिले हैं उन्हें मूल दोहों सहित उद्धृत कर दिया है।

'अष्टछाप' पर खोज करते समय, हिन्दी साहित्य के कूट-काव्य पर विशेष ध्यान गया और जमाल के कूट दोहे भी इसी में हाथ लगे। फलतः कूट-परम्परा की पूरी शोध करनी पड़ी और कुछ नवीन सामग्री भी उपलब्ध हुई, परन्तु उसको प्रकट करने का यह अवसर नहीं। तो भी यहाँ इतना तो अवश्य उल्लेख करना पड़ेगा कि जमाल उच्चश्रेणी का एक कुशल कवि है। उसका काव्य-रीतिबद्ध है। रीति-काव्य की रूढ़ियों को खोलने के लिए उसका अध्ययन अनिवार्य है। यदि जमाल के कुछ दोहे और मिल जायें और कोई प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति भी प्राप्त हो जायतो उनके आधार पर इसका फिर से सम्पादन होना हमारे साहित्य के लिए अति आवश्यक है। इससे कूट-परम्परा और कूट की विभिन्न शैलियों का मार्ग खुल जायगा। इसी प्रेरणा से प्रभावित हो हमने कूट दोहों का अर्थ किया है! बहुत सम्भव है इन दोहों का और भी सुन्दर अर्थ हो। इन पर विद्वानों को ध्यान देना चाहिए। क्योंकि खेल में भी बहुत से काम बनते हैं और 'बुझौवल' में भी बहुत से रहस्य खुलते हैं। अन्यथा कबीर, सूर और तुलसी उसे क्यों अपनाते?

काव्य-परिचय

जमाल ने कृष्ण सम्बन्धी दोहे भी रचे हैं किन्तु स्थान स्थान पर अपने नीति तथा भक्ति के दोहों में भी उन्होंने प्रेम को ही प्रमुख स्थान दिया है जिससे सिद्ध होता है कि वे प्रेम-पीर के पुजारी कोई सूफी कवि थे। उनकी अन्तिम अभिलाषा (दोहा ३२१) उनकी सौन्दर्य्य-भावना को

व्यक्त करती है। कवि मानव शरीर को काठ का लट्टू भर मानता है जो प्रेम की डोरी से चारों ओर घुमाया जा रहा है। उसे प्रिय की प्राप्ति के लिए वन वन मारा फिरना ठीक नहीं लगता, वह तो हृदय में ही उसे ढूँढ़ना चाहता है (दोहा १०१)।

अलंकारों और काव्य की अन्य बारीकियों पर विचार करना यहाँ इष्ट नहीं रहा है। फिर भी इतना तो स्पष्ट ही है कि कवि के कूट दोहों से अभिज्ञ हो जाने पर प्रत्येक पाठक उनमें अनायास ही रीति-साहित्य का रस ले सकेगा।

काव्य-मकरंद के लोभी मधुव्रतों को जमाल अवश्य ही प्रिय होगा। अब वे उसे भूल नहीं सकते: "कारण कवन जमाल"!

—— ❀❀❀❀❀ ——

जमाल दोहावली

अबसि चैन-चित रैण-दिन, भजहीं खगाधिपध्याय।
सीता-पति-पद-पद्म-चह, कह जमाल गुण गाय ॥१॥

पक्षी आदि भी जिसकी आराधना कर, निर्भय रहते हैं, तू भी उन्हीं के गुण गाकर भगवान राम के चरणों में आश्रय पाने की चाह कर ॥ १ ॥

मोर मुकुट कटि काछनी, मुरली सबद रसाल।
आवत है बनि विमल कै, मेरे लाल जमाल ॥२॥

मेरे प्रिय, मोर मुकुट धारण किये, काछनी काछे बांसुरी बजाते हुए, सज धज कर आ रहे हैं ॥ २ ॥

बंसी बाजै लाल की, गन गन्धर्व विहाल।
ग्रह तजि तजि तहँ कुल वधु, स्रवनन सुनत जमाल ॥३॥

जिस समय लाल की बंशी बजती है तो उसे सुनकर गन्धर्वगण बेसुध हो जाते हैं, और व्रज की कुलवधुएँ भी गृह कार्य तज कर उसे ध्यान से सुनने लगती हैं ॥ ३ ॥

विधि विधि कै सब विधि जपत, कोऊ लहत न लाल।
सो विधि को विधि, नन्द घर, खेलत आप जमाल ॥४॥

भाँति भाँति के लोग सभी प्रकार से उस (ईश्वर) को जपते हैं, पर

कोई उसको पाता नहीं। वह कौन-सी विधि है जिसके कारण वह देव स्वयं नन्द के घर में खेल रहा है ॥ ४ ॥

हरै पीर तापैं हरी, बिरद् कहावत लाल।
मो तन में वेदन भरी, सो नहिं हरी जमाल ॥ ५ ॥

हे परमात्मा ! तू पीर (वेदना) हरण कर लेता है इसी से तेरा विरद् हरी कहा गया है, पर मेरे शरीर में व्याप्त पीड़ा को तूने अभी तक क्यों नहीं हरण किया ॥ ५ ॥

दुस्सासन एंचन इचत भरी बसन की माल।
चीर बधायो द्रोपदी, रच्छा करी जमाल ॥ ६ ॥

दुःशासन ने खींचते खींचते वस्त्रों का ढेर लगा दिया, पर द्रौपदी के चीर को बढ़ाकर परमात्मा ने उसकी रक्षा की ॥ ६ ॥

सब घट माँही राम है, ज्यौं गिरिसुत में लाल।
ज्ञान गुरु चकमक बिना, प्रकट न होत जमाल ॥ ७ ॥

पर्वत में स्थित रत्नों के समान राम प्रत्येक शरीर में व्याप्त है। किन्तु, बिना गुरु से ज्ञान प्राप्त किये वह (राम) प्रकट नहीं होता ॥ ७ ॥

कर घूँघट जग मोहिये, बहुत भुलाए लाल।
दरसन जिनैं दिखाइयाँ, दरसन जोग जमाल ॥ ८ ॥

हे लाल (प्रिय) तुमने घूँघट करके (गुप्त रहकर) जगत को अपनी ओर आकर्षित किया। बहुत लोग तुम्हें खोजते खोजते भटक गये पर तुमने उनको ही दर्शन दिया, जो कि दर्शन के योग्य थे ॥८॥

अलक लगी है पलक सै, पलक लगी भौंनाल।
चन्दन चोकी खोल दै, कब के खड़े जमाल ॥ ९ ॥

तेरी अलकें पलकों को और पलकें भौहों को स्पर्श कर रही हैं। (इस तन्मयता और आत्मविस्मृति को छोड़कर) अब मन के कपाट भी खोल दे। देख भगवान (तेरे प्रिय) कब के खड़े हैं, (उनका शीघ्र स्वागत कर) ॥ ६ ॥

जग सागर है अति गहर, लहरि विषैं अति लाल।
चढ़ि जिहाज अति नामकी, उतरैं पार जमाल ॥ १० ॥

संसार सागर बहुत गहरा है, विषय वासनाओं की लहरें भयंकर उठ रही हैं। बिना प्रभु के नाम की नौका के पार उतरना कठिन है ॥ १० ॥

या तन की सारैं करूँ, प्रीत जु पासे लाल।
सतगुरु दाँव बताइया, चोपर रमे जमाल ॥ ११ ॥

शरीर की गोटें (मोहरें) और प्रीति के पासे हैं, सतगुरु दांव (चाल) बता रहे हैं; और चौपड़ का खेल खेल रहा हूँ ॥ ११ ॥

या तन खाख लगाय के, खाखा करूँ तन लाल।
भेष अनेक बनाय कै, भेटों पिया जमाल ॥ १२ ॥

मैं इस शरीर पर भस्म लगाकर, मन अनुराग से रंजित करके प्रियतम से भेंट करने के लिये अनेक भेष बनाऊँगी ॥ १२ ॥

या तन की भट्टी करूँ, मन कूँ करूँ कलाल।
नैणाँ का प्याला करूँ, भर भर पियो जमाल ॥ १३ ॥

इस शरीर को भट्टी (आसव के बनाने का चूल्हा) और मन को कलाल (मदिरा विक्रेता) बनालूँगी। पर तुम नयनों के प्यालों में प्रेम (भक्ति) की मदिरा भर भर कब पियोगे ? ॥ १३ ॥

या तन की जूती करूँ, काढ़ रँगाऊँ खाल।
पायन से लिपटी रहूँ, आठूँ पोर जमाल ॥ १४ ॥

शरीर की त्वचा (चमड़ी) को निकाल कर, उसे रंग कर म्हारे वास्ते जूती बनाकर तुम्हारे पावों में आठों पहर (सदा) लेपटा रहूँ (चरणों में आश्रय पाता रहूँ) यही कामना है ॥ १४ ॥ ÷

शुतर गिरयो भहराय के, जब आ पहुँच्यो काल।
अल्प मृत्यु कूँ देखिकें, जोगी भयो जमाल ॥ १५ ॥

ऊँट के समान विशाल शरीर वाला पशु भी काल (मृत्यु) आने र हड़बड़ाकर गिर पड़ता है। इस प्रकार शरीर की नश्वरता देखकर कवि जमाल उदासीन हो गया ॥ १५ ॥

मिलै प्रीत न होत है, सब काहू कैं लाल।
बिना मिलें मनमें हरष, साँची प्रीत जमाल ॥ १६ ॥

हे लाल ! (प्रिय) मिलने पर तो सभी के मन में प्रेम उपजता है पर साँची प्रीति तो वही कही जावेगी कि जो बिना मिलेही (स्मृति द्वारा) आनन्द उत्पन्न करती रहे ॥ १६ ॥

÷ पाठांतर—बकरी होस्यूँ राजरी, काढ़ रँगावो खाल।
पाँयन बिच लिपटी रहूँ, आठूँ पोर जमाल ॥१५ अ॥

अर्थ स्पष्ट है (उपर्युक्त दोहे का अर्थ देखें)।

जमला, तो सूँ कह रही काढ़ रँगाऊँ खाल।
तेरे पग कूँ पानही, जूती करूँ जमाल ॥१५ बा॥

(अर्थ उपर्युक्त दोहे सा ही है)

नैन मिलैं तैं मन मिलैं, होई साट दर हाल।
इह तौ सौदा सहज का, जोर न चलत जमाल ॥ १७ ॥

नयनों के मिलन से मन भी मिल जाता है अर्थात दोनों एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हो जाते हैं (अनुरक्त हो जाते हैं) यह तो प्रेम का स्वाभाविक सौदा है इसमें बल पूर्वक कुछ नहीं प्राप्त किया जा सकता ॥ १७ ॥

जमला लट्टू काठ का, रंग दिया करतार।
डोरी बाँधी प्रेम की, घूम रह्या संसार ॥ १८ ॥

विधाता ने काठ के लट्टू को रंगकर प्रेम की डोरी से बांधकर उसे फिरा दिया और वह संसार में चल रहा है।

अभिप्राय:—पंच तत्त्व का यह मनुष्य शरीर विधाता ने रचा और सजाकर उसे जन्म दिया। यह शरीर संसार में अपने अस्तित्व को केवल प्रेम (बन्धुत्व) के ही कारण स्थिर रख रहा है ॥ १८ ॥

जमला कपड़ा धोइये, सत का साबू लाय।
बूँद ज़ लागी प्रेम की, टूक टूक * हो जाय ॥ १९ ॥

सत्य का साबुन लगाकर अपने मन-रूपी मलीन कपड़े को धोना चाहिए। प्रेम की यदि एक बूँद भी लग जावेगी तो (हृदय की) मलीनता टूक टूक होकर नष्ट हो जावेगी ॥ १९ ॥

जमला जा सूँ प्रीत कर, प्रीत सहित रह पास।
ना वह मिलै न बीछड़ै, ना तो होय निरास ॥ २० ॥

---

*पाठान्तर—छींट छींट

उसी से प्रीत करो जोकि सदा प्रेमपूर्वक संग रहे। वह कभी ले या बिछुड़े नहीं जिससे निराश न होना पड़े।

अभिप्रायः—अपने प्रिय में लीन हो जाओ जिससे मिलन का सुख र बिछुड़ने का वियोग ही सहना न पड़े ॥ २० ॥

जमला ऐसी प्रीत कर, जैसी केस कराय।
कै काला कै ऊजला, जब तब सिर सूँ जाय ॥ २१ ॥

प्रीत तो ऐसी करो जैसी कि शिर के केश करते हैं। वे अपने ान को नहीं छोड़ते शिर के साथ उत्पन्न होते हैं, चाहे काले चाहे जले भले हो जायँ, पर जब तक शिर रहता है तब तक उसके साथ ते हैं ॥ २१ ॥

जमला, ऐसी प्रीत कर, जैसी हिंदू जोय।
पूत पराये कारणै, जलबल कोयला होय ॥ २२ ॥*

प्रीति तो ऐसी करनी जैसी कि एक हिन्दू स्त्री करती है। वह पराये ा के लिये (अपना पति हो जाने पर) समय पड़ने पर स्वयं को जाकर (सती होकर) राख बना देती है ॥ २२ ॥

जमला, ऐसी प्रीत कर, जैसी निस अर चंद।
चंदे बिन निस सांवली, निस बिन चंदो मंद ॥ २३ ॥

प्रीति तो ऐसी करनी चाहिए कि जैसी निशा और चन्द्र में होती । बिना चन्द्र के निशा काली (मलीन) रहती है और बिना

---

*सम्मन का समअर्थी दोहा—सम्मन ऐसी प्रीत कर, ज्यों हिंदू की जोय।
जीतों जी तो संग रहे, मरयाँ प सत्ती होय ॥

निशा के चन्द्र भी कान्ति-हीन रहता है। (पर निशा चन्द्रमा का जब संयोग होता है, तब तो उसका सौन्दर्य, देखते ही बनता है) ॥ २३ ॥

जमला ऐसी प्रीत कर, जैसी मच्छ कराय।

टुक एक जल थी वीछड़े, तड़फ तड़फ मर जाय ॥ २४ ॥

प्रीत तो ऐसी करनी चाहिए जैसी मछली जल से करती है। जल से यदि वह थोड़ी देर भी अलग हो जाती है तो तड़प-तड़पकर मर जाती है ॥ २४ ॥

जमला ऐसी प्रीत कर, ज्यूँ बालक की माय।

मन लै राखै पालणै, तन पाणी कूँ जाय ॥ २५ ॥

प्रीति तो ऐसी करो जैसी एक माता अपने बालक से करती है। वह जब पानी भरने जाती है तब अपने मन को तो झूले में पड़े बालक के पास ही छोड़ जाती है। (उसका तन तो उसकी सन्तान से दूर रहता है पर मन उसी में लगा रहता है) ॥ २५ ॥

जमला प्रीत सुजाण सें, जे कर जाणै कोय।

जैसा मेला निजर का, तैसा सेज न होय ॥ २६ ॥ ×

यदि सज्जन (प्रिय) से कोई प्रेम करना जान ले तो जैसा आनन्द उसे दर्शन करने में होगा, वैसा सेज (सहज या शय्या) में नहीं होता। प्रिय के दर्शन का सुखद आनन्द सभी दैहिक सुखों से बढ़कर और दुर्लभ है ॥ २६ ॥

× इसी भाव का एक दोहा—नैणाँ हन्दी प्रीतड़ी, जे कर जाणै कोय।
जो रस नैणाँ ऊपजे, सो रस सेज न होय ॥

दुर्जन निंदत सजन कौं, तालक नांहिन लाल।
छार घसे ज्यों आरसी, दूनीं जोति जमाल ॥ २७ ॥

हे प्रिय (लाल) दुर्जन किसी सज्जन की निंदा करके कुछ बिगाड़ नहीं पाते हैं (वरन् सज्जन का परोपकारी रूप और निखर आता है) जैसे आरसी पर क्षार घिसने से वह मन्द होने की अपेक्षा अधिक आभा-पूर्ण हो जाती है ॥ २७ ॥

सज्जन हित कंचन-कलश, तोरि निहारिय हाल।
दुर्जन हित कुमार-घट, बिनसि न जुरै जमाल ॥ २८ ॥

सज्जन पुरुष का प्रेम सुवर्ण के कलश के समान है जो कि टूट जाने पर जुड़ जाता है, पर दुर्जन का प्रेम मिट्टी के घड़े-सा है जो कि टूटने पर जुड़ ही नहीं सकता ॥ २८ ॥

सज्जन एहा चाहिये, जेहा तरवर ताल।
फल भच्छत पानी पियत, नांहि न करत जमाल ॥ २९ ॥

सज्जन को तालाव और वृक्ष सा परोपकारी होना चाहिए। ये दोनों पानी पीने और फल खाने के लिए किसी को मना नहीं करते हैं ॥ २९ ॥

खोटे का को कहै धनी, खोटे दाम हि लाल।
सोई ता कौं आदरै, जाके दाम जमाल ॥ ३० ॥

हे प्रिय (लाल) कोई किसी को बुरा (खोटा) नहीं कहता है, गुण व अवगुण ही खोटेपन का निश्चय करते हैं। जिसमें गुण (दाम) होते हैं उसी का आदर होता है ॥ ३० ॥

प्रीत ज कीजै देह धर, उत्तम कुल सुँ लाल।
चकमक जुग जल में रहै, अगन न तजै जमाल ॥ ३१ ॥

हे प्रिय संसार में देह धारण करके (जन्म लेकर) प्रेम उच्चकुल वाले से ही करना चाहिए। चकमक पत्थर यदि युगों तक जल में भी डूबा रहे तो वह अपनी अग्नि को नहीं छोड़ सकता ॥ ३१ ॥

दान गुनी कौं दीजिये, के रुपिया रे लाल।
सो प्रदेस कीरति करै, आठौं पहर जमाल ॥ ३२ ॥

हे प्रिय दान हमेशा सत्-पात्र को ही देना चाहिए। वह गुणी धन पाकर जब परदेश में जावेगा तब दाता की कीर्त्ति को आठों पहर बखानता रहेगा ॥ ३२ ॥

पूनम चाँद कसूँभ रँग, नदी तीर द्रुम डाल।
रेत भींत, भुस लिपणो, ऐ थिर नहीं जमाल ॥ ३३ ॥

पूर्णिमा का चन्द्रमा, कुसुंभी रँग, नदी तट के पेड़ की डाल, रेत की बनी भींत और भूसी से लिपा स्थान, ये कभी स्थिर नहीं रहते (इनका क्षय निश्चय है) ॥ ३३ ॥

दुतिया चाँद, मजीठ रँग, साध वचन प्रतीपाल।
पाहण रेख, करम्म गत, ऐ नहिं मिटत जमाल ॥ ३४ ॥

दूज का चाँद, मजीठ का रंग, साधु का वचन (वरदान या शाप) पत्थर पर की रेखा और कर्म्मों की गति (फल) ये कभी नहीं मिटती (इनका होना निश्चय है) ॥ ३४ ॥

जमला तहाँ न जाइये, जाँ केहरी निवाण।
आ सँभराइसि दुख्खड़ा, माराइसि अप्पाण ॥ ३५ ॥

अपना दुःख प्रकट करने कभी सबल के यहाँ न जाना चाहिए (क्योंकि वहाँ सहानुभूति नहीं मिलेगी) दुःखी मनुष्य तो अपना दुःख रोवैगा, पर वह सबल शेर (धनी अथवा बड़ा आदमी) उसको ही मार डालेगा (उसकी उपेक्षा कर देगा)॥ ३५ ॥

जमला करै त क्या डरैं, कर कर क्या पछताय।
रोपै पेड़ बबूल का, आम कहाँ तें खाय॥ ३६॥

तू कर्म करता हुआ क्यों डरता है और कर्म करके पछताती क्यों है? बबूल वृक्ष को बोकर फिर आम खाने को कहाँ से मिलेगें? ॥ ३६ ॥

जमला जोबन फूल है, फूलत ही कुमलाय।
जाण बटाऊ पंथसरि, वैसे ही उठ जाय॥ ३७॥

यौवन एक फूल है जो कि फूलने के बाद शीघ्र ही कुम्हला जाता है। वह तो पथिक-सा है जो मार्ग में तनिक-सा विश्राम लेकर, अपनी राह लेता है ॥ ३७ ॥

तरवर पत्त निपत्त भयो, फिर पतयो ततकाल।
जोबन पत्त निपत्त भयो, फिर पतयौ न जमाल॥ ३८॥

पतझड़ में पेड़ पत्तों से रहित हुआ पर तुरंत ही फिर पल्लवित हो गया। पर यौवन-रूपी तरुवर पत्तों से रहित होकर फिर लावण्य युक्त नहीं हुआ ॥ ३८ ॥

सोना बया न नीपजै, मोती लगै न डाल।
रूप उधारा नां मिलै, भूलै फिरै जमाल॥ ३९॥

सोना बोने से उपजता नहीं, मोती किसी डाल में नहीं फलता,

रूप (लावण्य) कहीं से उधार नहीं मिल सकता; इनकी प्राप्त करने के हेतु भ्रमवश भटकना नहीं चाहिए ॥ ३९ ॥

सकल छत्रपति बस किये, अपणे ही बल बाल ।
सबल कुँ अबला कहै, मूरख लोग जमाल ॥ ४० ॥

सुन्दरी (बाला) स्त्री अपने (लावण्य के) बल पर बड़े बड़े महाराजाओं को वश में कर लेती है। इतने पर भी इस प्रकार की सबला (स्त्री) को अबला कहना, (और असावधान रहना) अज्ञानियों का काम है ॥ ४० ॥

ससि कलंक खारो समुद्र, कमलहि कंटक नाल ।
ज्ञानी दुःखी, मूरख सुखी, दईकूं बूझि जमाल ॥ ४१ ॥

सुखद शीतल चन्द्रमा में कलंक होना, समुद्र की विशाल जल राशि का खारा होना और सुकोमल कमल की नाल में काँटों का होना, ज्ञानी मनुष्य का इस जगत् के प्रपंचों से नित्य दुखी रहना और अज्ञानी का सुखी रहना, यह सब विचित्रतायें हैं, इनका कारण तो ईश्वर से ही पूछना चाहिये ॥ ४१ ॥

साजण विसराया भला, सुकरया करै बेहाल ।
देखो चतर विचार के, साँची कहै जमाल ॥ ४२ ॥

हे चतुर (पुरुष) तू विचार कर (वियोग में), प्रियतम को भूल जाना ही हितकर है। यह बात सत्य है उसका स्मरण मन की स्थिति को बिगाड़ देता है, ॥ ४२ ॥

स्याम पूतरी, सेत हर, अरुण ब्रह्म चख लाल ।
तीनों देवन बस करे, क्यों मन रहै जमाल ॥ ४३ ॥

हे प्रिय, तुम्हारे नयनों ने तीनों देवताओं को जब वश में कर लिया है, तब मेरा मन क्यों न तुम्हारे वश हो जायगा ? नेत्रों की श्याम पुतली ने विष्णु को, श्वेत कोयों ने शिव को और अरुणाई ने ब्रह्मा को मोह लिया है ॥ ४३ ॥

स्रवन छाँड़ि, अधरन लगे, ये अलकन के बाल ।

काम डसनि नागनि जहीं, निकसे नाहिं जमाल ॥ ४४ ॥

घुघराले बाल कानों के निकट न रहकर (आगे की ओर आकर) अधरों को छू रहे हैं। यह काकपक्ष की लटें नागिन की भाँति डसकर विकार को उत्पन्न कर रही हैं और यह विष शरीर के बाहर निकाला नहीं जा सकता ॥ ४४ ॥

नयन रँगीले कुच कठिन, मधुर बयण पिक लाल।

कामण चली गयंद गति, सब बिधि वणी, जमाल ॥४५॥

हे प्रिय, उस नायिका के प्रेम भरे नेत्र अनुराग के कारण लाल हैं। उन्नतस्तन कोयल-सी मधुर वाणी वाली, सब प्रकार से सजी हुई गजगामिनी कामिनी चली जा रही है ॥ ४५ ॥

चित्र चतेरा जो करै, रचि पचि सूरत बाल ।

वह चितवनि वह मुर चलँन, क्योंकर लिखै जमाल॥४६॥

यदि कोई चित्रकार उस बाला के चित्र के आलेखन करने का प्रयास करे तो उसके लिए उस बाला की चितवन, सौन्दर्य और उसकी गति को चित्रित करना असम्भव होगा ॥ ४६ ॥

पहिरैं भूषन होत है, सब के तन छबि लाल ।

तुव तन कंचन तै सरस, जोति न होत जमाल ॥ ४७ ॥

आभूषण पहिनने से सबके शरीर पर सौन्दर्य छा जाता है, पर तेरे तन का रंग तो सुवर्ण से भी अधिक आभायुक्त है। इस हेतु आभूषणों से तेरे शरीर पर कोई दीप्ति नहीं आती ॥ ४७ ॥

ससि, खंजण, माणक, कवँल, कीर बदन एक डाल।
भवंग पुँछ तें डसत है, निरखत डर्यो जमाल ॥४८॥

एक ही डाल पर सामने ही (वदन, आनन) मैंने चन्द्रमा, खंजन, मोती, कमल, कीर, शुक आदि को देखा। उसमें लपटा एक सर्प पूँछ की ओर से डसता था, यह सब देखकर तो मैं भयभीत हो उठा।

गूढ़ार्थ—वह स्त्री (डाल) अपने हाथ (कमल) पर अपना मुँह रखे थी। उसके नेत्र खंजन के समान थे। दंतावली मोती के समान उज्ज्वल और नासिका शुक की चोंच की तरह नुकीली और वेणी उसकी नागिन की-सी थी ॥ ४८ ॥

राधे की बेसर बिचैं, बनी अमोलक बाल।
नन्दकुमार निरखत रहैं, आठों पहर जमाल॥ ४९ ॥

नथ पहनने पर राधिका अत्यंत मोहक हो जाती थीं, इस लिए श्रीकृष्णजी आठों पहर उनके रूप को देखते रहने पर भी अघाते नहीं हैं ॥ ४९ ॥

जमला एक परब्ब छबि, चंद मध्ये विविचंद।
ता मध्ये होय नीकसे, केहर चढ़े गयंद ॥ ५० ॥

एक अवसर (पर्व) पर यह दिखाई पड़ा कि चाँद के मध्य में दो चन्द्र हैं और इसी बीच हाथी पर चढ़ा हुआ एक सिंह निकला।

गूढ़ार्थ—नायिका के चन्द्र-मुख में जो दो उसके नेत्र हैं, उनमें नायक के चन्द्रमुख का प्रतिबिंब पड़ रहा है। इस प्रकार नायिका के चन्द्रमुख में दो चन्द्र और दीख पड़े। इसी समय वह नायिका वहाँ से हटी तो हाथी के समान उसकी जाँघों पर सिंह की-सी पतली कमर को देखकर कवि ने कूट में दृश्य को अंकित किया ॥ ५० ॥

पिय फूले तैं हूं हरी, पिया हरैं हूँ डाल।
पिया मो हु, मो में पिया, इक ह्वै रहे ज़माल ॥ ५१ ॥

प्रिय के प्रसन्न होने पर मैं उमंगित हो जाती हूँ और प्रिय के उमंगित हो जाने पर मैं उन्हीं का अंग बन जाती हूँ। प्रिय मेरे हैं और मैं उनकी हूँ, इस तरह हम दोनों अब एक हो गये हैं ॥ ५१ ॥

नैणाँ का लड्डुवा करूँ, कुच का करूँ अनार।
सीस नाय आगे धरूँ, लेवो चतर जमाल ॥ ५२ ॥

हे नागर, मैं नतमस्तक होकर, लड्डू से नेत्रों और बंद अनार से दृढ़ कुचों को आपके सम्मुख समर्पण करती हूँ, आप इन्हें स्वीकार करें ॥ ५२ ॥

भौं जमाल कहुं जान मोहि, कहूँ काह मैं तोहि।
निस बासर बृज चन्द जू, छोड़त नहिं कभूँ मोहि ॥ ५३ ॥

मैं तुझसे क्या कहूँ, रात दिन कृष्ण मुझे घेरे रहते हैं और कभी अपने से विलग नहीं होने देते हैं ॥ ५३ ॥

अब नहिं जाउँ सनान को, भूलि सखी! उहि ताल।
इक चकई अरु कमल कौं, बहुत वियोग जमाल ॥ ५४ ॥

हे सखी अब भूलकर भी उस सरोवर में स्नान करने नहीं जाऊँगी; क्योंकि चकई और कमल को बहुत दुःख होता है।

गूढ़ार्थ—नायिका रूपगर्विता है और समझती है कि उसके चन्द्र-मुख को देखकर, रात्रि वेला, जानकर, चकवा और चकई बिछुड़ जाते हैं। कमल भी मुरझाकर दुःखित हो जाता है॥ ५४॥

जब तरणापो मुझ्झथो, पाय परत नित लाल।
कर ग्रह सीस नवावती, जोबन गरब जमाल॥ ५५॥

जब मैं तरुणी थी, तब यौवनमद के कारण मैं प्रियतम को बलपूर्वक नवाती थी और वे नित्य मेरे पाँव पड़ते थे॥ ५५॥

लोक जु काजर की लगी, अंग लगे उर लाल।
आज उनीदे आइये, जागे कहाँ जमाल॥५६॥

हे प्रिये! आज तुम्हारे वक्षस्थल पर यह काजल की रेखा कैसी? आज जो ऊंघते हुये आये हो, क्या कहीं जगे थे?॥ ५६॥

एक सखो ऐसे कह्यो, वे आये घन लाल।
उझकि बाल, झुकि कैं लखै, अति दुख भयो जमाल॥५७॥

सखी ने कहा—वे देखो घनश्याम (काले बादल) आ रहे हैं। यह सुनकर उस उत्कंठिता ने झांक कर पथ की ओर देखा, किन्तु बादलों के समूह के अतिरिक्त और कुछ भी न देखकर बहुत दुःखी हो गई॥ ५७॥

अरूझि रीझ रीझै नहीं होतनि मोही लाल।
पिय आवनकी आस सौं, लालहि भई जमाल॥ ५८॥

वियोग व्यथा से व्यथित वह बाला अनेक प्रकार के उपचारों से

प्रसन्न नहीं होती है, पर प्रिय के आगमन की आशा बँधते ही वह उमंगित हो उठी ॥ ५८ ॥

तिय ननदी पिय सासु सो, कलह करी ततकाल ।
सांझ परत सूनो भवन, बुझई दीप जमाल ॥५९॥

उस स्त्री ने शीघ्र ही अपनी ननद, सास तथा पति से कलह कर लिया । इस प्रकार संध्या पड़ते ही उस घर में दीपक बुझ गया । इस कलह के साथ ही नायिका का मान भी ध्वनित होता है ॥ ५९ ॥

घुंघटा ठाढ़ी नैन जल, प्रेम सील मुख नाल ।
हांसी कपां लाइया, फांदे साहि जमाल ॥६०॥

विदेश जाते पति को बिदा देते जब वह अश्रुपूर्ण नेत्रों वाली नायिका घूँघट निकाल कर खड़ी हुई, तब प्रेम व संकोच के कारण बोल न सकी । झूठी हँसी हँसकर जब बिदा देने लगी तब वह काँप उठी, पति इस संचार को देखकर मोहित हो गया और विदेश जाना रुक गया ॥ ६० ॥

कियौ सुकछु नैनन कियौ मैं न कियौ मिर लाल ।
लंका सो गढ़ टूटियो, घर के भेद जमाल ॥६१॥

मेरे प्रिय ! जो कुछ हुआ वह सब इन नयनों के कारण ही मेरे मन का भेद खुल गया । घर के भेदी के कारण ही लंका सा सुदृढ़ दुर्ग तोड़ा गया था ॥ ६१ ॥

यो मन नीके लगत हो, मोहत मो मन लाल ।
कहूं कहा मोहन तुमैं, पीत न होत जमाल ॥६२॥

मोहन ! मैं तुमसे क्या कहूँ, तुम हृदय को भाते हो और मेरे

मन को मोह लेते हो, पर तुम (निरमोही) से प्रीति नहीं हो पाती है ॥ ६२ ॥

जमला जिय गाहक भए, नैणा भए दलाल।
धनी वसत नहिं वेच ही, भूले फिरत जमाल ॥६३॥

मन गाहक और नयन दलाल हैं। मैं सौदा करने के लिए उत्सुक हूँ पर मालिक अपनी वस्तु (हृदय) न बेचकर (देकर) भूला फिर रहा है ॥ ६३ ॥

इसी भाव के पाठांतरित दोहे—

गुण के गाहक लख भए, नैणा भए दलाल।
धनी बसत नहिं बेचहिं, भूले फिरे जमाल ॥ ६४ ॥
मन ग्राहक के पास है, नैना बड़े रसाल।
घटत बढ़त बहु भाव करि, मिले जु वसत जमाल ॥ ६५ ॥
जोबन आए गाहकी, नैणाँ मिले दलाल।
गाहक आए लेण कूँ, बेचो क्यूँ न जमाल ॥ ६६ ॥
मनसा तो गाहक भए, नैणा भए दलाल।
बसत[1] खसम[2] बेचै नहीं, बटै[3] कहा जमाल ॥ ६७ ॥

मोर मुकुट कटि काछिनी, गल फूलन की माल।
कह जानौं कित जात हैं, जगकी जियन जमाल ॥६८॥

मोर मुकुट धारण किए काछनी काछे, गले में फूलों की माला पहिने जग के प्राण कृष्ण न मालूम कहां जा रहे हैं ? ॥ ६८ ॥

---

१ वस्तु। २ मालिक। ३ बिक्री होना।

काहू कै बस न हौ, वस न सु काके लाल।
बसन कौन के जात हो, पलटैं भेष जमाल ॥६६॥

यह वस्त्र किसके हैं? भेष बदले हुए, कहाँ बसने (रहने) जा रहे हो, तुम तो किसी के वश में नहीं हो? ॥ ६६ ॥

डगमग नयन सुसगमगे, विमल सु लखे जु बाल।
तसकर चितवनि स्याम की, चित हरलियो जमाल ॥७०॥

जब बाला ने कृष्ण को अपने चंचल नेत्रों से देखा तो किसी को अपनी ओर देखता जान कर श्याम ने भी उसकी ओर देखा। उनकी इस चितवन ने उसका मन मोह लिया ॥ ७० ॥

नैना कहियत पनिगनी, कहौ तुम्हाँरे लाल।
डसै पिछै सबदन कछू, लागत नांहि जमाल ॥७१॥

हे लाल! तुम्हारी आँखें पन्नगी (सर्पिणी) ठीक ही कही जाती हैं। उनके डसने (लग जाने) पर कोई मंत्र (उपाय) नहीं चल पाता है ॥ ७१ ॥

कबहुँ न छिन ठहरत हैं, मधुकर नैनां लाल।
पहुप अधिक बहु रूप के, हेरत फिरैं जमाल ॥७२॥

हे लाल! तुम्हारे भौंरे से चंचल नेत्र कहीं टिकते नहीं हैं। अन्य सुन्दर रूप वाले पुष्पों (स्त्रियों) को खोजते ही फिरते रहते हैं ॥ ७२ ॥

अलक जु लागी पलक पर, पलक रही तिहँ लाल।
प्रेम-कीर के नैन में, नींद न परै जमाल ॥७३॥

पलकों को जब सिर के बाल छूने लगे तब से पलकें वहीं हैं

(अर्थात् तन्मयता व साधना के कारण खुली हैं) नेत्रों के मध्य में प्रेम रूपी तोते के आ बसने से नींद भी नहीं आती है ॥ ७३ ॥

इसी भाव के पाठांतरित दोहे—

अलक जु लागी पलक सूँ, पलक रही तिहाँ, लाल ।
खिड़की खोलि न आवही, सूरति याक जमाल ॥ ७४ ॥

अलक जु लागी पलक सूँ, पलक रही ग्रह झाल ।
आँखिन प्रेम फरिक्किया, नींद न परत जमाल ॥ ७५ ॥

पिय कारन सब अरपियो, तन मन जोबन लाल ।
पिया पीर जानैं नहीं, किस सौं कहौं जमाल ॥ ७६

मैंने अपना तन मन और यौवन सभी तुम्हें अर्पण कर दिया है किन्तु तुम ऐसे निर्मोही हो कि उसका अनुभव नहीं करते । अ किससे अपना दुःख कहूँ ? ॥ ७६ ॥

कियौ करेजो काँथरी, करी डोर पिय लाल ।
सांस सुई सींवत फिरौं, आठौं पहर जमाल ॥७७॥

प्रियतम ! आपके विरह से विदीर्ण हृदय को सांस रूपी सु और अनुराग के लाल धागे से आठों पहर सीती रहती हूँ ॥ ७७

जमला जोगन मैं भई, घाल गले मृग-छाल ।
वन-वन डोलत हूँ फिरूँ, करत जमाल जमाल ॥७८॥

प्रियतम को प्राप्त करने के लिए मैं गले में मृगछाला डाल क उसका नाम ले लेकर जोगिनी की तरह वन वन खोजती फि रही हूँ ॥ ७८ ॥

इसी भाव के पाठांतरित दोहे—

जमला सहु जग हूँ फिरी, बाँध कमर मृग-छाल ।

अजहूँ कंत न मानही अवगुण कोण जमाल ॥ ७९ ॥

जोगिनि ह्वै सब जग फिरी कमरि बाँधि मृगछाल ।

बिछुरे साजन नां मिले, कारन कौन जमाल ॥ ८० ॥

रे हितियारे अधरमी, तुँ न आवत लाल ।

जोबन अजुंरी नीर सम, छिन घट जात जमाल ॥८१॥

प्रियतम ! तुम कितने कठोर हृदय वाले और अन्यायी हो । ंजलि में भरे पानी के समान यौवन अस्थिर है; वह चला जायगा । स आते क्यों नहीं हो ? ॥ ८१ ॥

मुख ग्रीषम, पावस नयन, तन भीतर जड़काल ।

पिय बिन तिय तीन ऋतु, कबहुँ न मिटैं जमाल ॥८२॥

स्वासों कीं उष्णता से ग्रीष्म, निरन्तर अश्रुपात से पावस और च्छाओं पर तुषारपात होने के कारण शिशिर इस प्रकार तीनों ऋतुओं ने उस विरहिणी के तन में अपना घर कर लिया है ॥८२॥

परि कटारी विरह की, टूट रही उर साल ।

मूएँ पीछैं जो मिलौ, जीयत मिलौ जमाल ॥८३॥

विरह रूपी कटारी हृदय में धंस कर टूट गई है, जो पीड़ा पहुँचा रही है । मरने के पश्चात् तो मिलोगे ही, पर इस जीवन में ही मुझे क्यों नहीं दर्शन दे देते हो ? ॥ ८३ ॥

जब जब मेरे चित्त चढ़ैं, प्रीतम प्यारे लाल ।

उर तीखे करवत ज्यूँ, बेधत हियो जमाल ॥८४॥

हे प्रियतम ! जब जब मैं आपका स्मरण करती हूँ तब तब तुम मेरे हृदय को तीक्ष्ण करवत के समान बींधते से जान पड़ते हो ॥ ८४ ॥

जमला प्रीत न कीजियै, काहू सों चित लाय।
अलप मिलण बिछुड़न बहुत, तड़फ तड़फ जिय जाय ॥८५॥

अपना सर्वस्व गँवाकर किसी से प्रीति न करनी चाहिए, क्योंकि सुख तो क्षणिक होता है पर वियोग अधिक सहन करना पड़ता है और प्राण तड़प तड़प कर तजने पड़ते हैं ॥ ८५ ॥

प्रीत रीति अति कठिन, प्रीत न कीजै लाल।
मिले कठिन, बिछुरन कहत, नित जिय जरै जमाल ॥८६॥

हे प्रिय ! प्रेम का पंथ बहुत टेढ़ा होता है इसलिये प्रेम नहीं करना चाहिए। प्रिय का संयोग तो थोड़ा होता है पर बिछुड़ने से नित्य जी जलता रहता है ॥ ८६ ॥

सज्जन मिले अनेक दुख बिसर गई छिन काल।
या सुख तैं दुखही भलो, कारन कौन जमाल ॥८७॥

सज्जन पुरुष से मिलने पर जो बहुत सुख हुआ मैं उस सुख को वियोगावस्था में, क्षण भर में ही भूल गई। इस सुख से तो दुख ही भला है। इसका क्या कारण है ? ॥ ८७ ॥

साजण बिसराया भला, सुमर्या करै बेहाल।
देखो चतर विचार कै, सांची कहै जमाल ॥८८॥

जमाल सत्य कहता है कि हे भोले प्राणी, जिस सज्जन की स्मृति मन को पीड़ा ही देती रहती है, उसे भूल जाना ही हितकर है ॥८८

उन नैनों वे देखतें, कहाँ नैन वे लाल।
पहिलैं प्रीत लगाय कैं, अब दुख भयो जमाल ॥८६॥

हे प्रिय ! जिन अनुराग भरे नेत्रों से तुम देखते थे, वे अब कहाँ ? पहिले तो प्रेम का नाता जोड़ा पर अब मैं दुख उठा रही हूँ ॥८६॥

तन सरवर मन माछुली, पड़ी विरह के जाल।
तड़फ तड़फ जिय जात है, वेगा मिलो जमाल ॥६०॥

तन रूपी सरोवर में, विरह जाल में, मेरा चित्त मछली सा फँसने के कारण, तड़फ तड़फ कर प्राण छोड़ रहा है। अतः शीघ्र ही दर्शन दीजिए ॥ ६० ॥

इसी भाव का पाठांतरित दोहा—

सरवर तन, मच्छीजु मन, कीर लहरि अति लाल।
विरह जाल निरखी बहुत, मीनन गही जमाल ॥ ९१ ॥

मारे मरै जु प्रेम के, ढूँढ़ फिरत ही लाल।
जिन घट वेदन विरह की, ते क्यौं जियैं जमाल ॥६२॥

हे प्रिय ! प्रेम में बेहाल विरही अपने प्रिय को ढूँढ़ते ही फिरते हैं, वे विरह वेदना से व्याप्त शरीर वाले भला जीवित कैसे रह सकते हैं ? ॥ ६२ ॥

निस वासर अवलोकियौ, नजर न आवै लाल।
किहँ सौं कहिये आपनौं, उर को दुख जमाल ॥६३॥

हे प्रिय ! मैं तुम्हें रात दिन खोजती रहती हूँ। पर तुम कभी दृष्टि में ही नहीं आते, भला मन की व्यथा मैं किससे कहूँ ॥ ६३ ॥

मन उमगे हसती भयो, चिके पाट असराल।

सकंल तोड़ै सार का, मुझ बस नहीं जमाल ॥६४॥

प्रिय मिलन के हेतु मेरा मन उमंगित होकर हाथी सा मतवाला हो गया है। सन के रस्सों और अपने घेरे को तो तोड़ ही चुका है (अर्थात् लोक मर्याद भी छोड़ चुका है) अब लोहे की जञ्जीरों को भी तोड़ना चाहता है (सांसारिक बन्धन भी तोड़ने वाला है) वह मेरे वश में नहीं है ॥ ६४ ॥

नैना सागर ज्यौं भरैं, विरह नीर सौं लाल।

दरस बिना नहिं जात है, अँखियन प्यास जमाल ॥६५॥

हे प्रिय ! विरह के कारण आँखें आँसुओं से सागर सी भर जाती हैं पर तेरे दर्शनों के बिना उनकी प्यास नहीं जाती है ॥ ६५ ॥

नैन चलैं नहिं सैन सूं, नाँहिनि खुलैं जमाल।

जौं लौं रूखै द्दग रहैं, तो लौं प्रीत जमाल ॥६६॥

हे प्रिय ! जब तक नेत्र दूसरे के इशारों के कारण विचलित नहीं होते; उनकी ओर देखने को उत्सुक भी नहीं होते हैं तभी तक नयन (अन्य लोगों से) विरक्त रहते हैं और उनमें प्रीति भी रहती है ॥६६॥

दुखदाई छतियाँ तपक है, विरह पलीता लाल।

आह अवाज न निकसती, जाती फूट जमाल ॥६७॥

हे प्रिय ! यह दुख देने वाला मन तोप के समान है और विरह रूपी पलीता उसे दाग रहा है। यदि आह रूपी आवाज़ न निकलती तो, यह मन (तोप का ढाँचा) फट ही जाता (अर्थात् शरीर का अन्त ही हो जाता) ॥ ६७ ॥

कर कंपत लेखनि डुलत, रोम रोम दुख लाल।
प्रीतम कूँ पतिया लिखुँ, लिखी न जात जमाल ॥९८॥

हे प्रियतम! तुम्हें पत्र लिखते समय, हाथ काँप रहा है और लेखनी भी हिल रही है। विरह के कारण रोम रोम में पीड़ा हो रही है, पत्र लिखा ही नहीं जा रहा है ॥ ९८ ॥

जो कहियौ सो सब कियौ, कह्यौ तुमारो लाल।
क्यूँ कठोर हम सौं भये, औगन कहा जमाल ॥९९॥

हे प्रिय! तुमने जो भी आज्ञा दी उसका पालन मैंने भली भाँति किया। फिर क्या चूक हुई है जो तुम कठोर बने हो ॥ ९९ ॥

तुझै न कैहूँ बीसरौं, सोवत जागत लाल।
जो सुप्रीति झूँठी कहूँ, तो न मिलो जमाल ॥१००॥

हे प्रिय! सोते जागते तुम्हें कभी भी नहीं भूलती हूँ, यदि तेरी सुखप्रद प्रीति को कपट पूर्ण (झूठी) बताऊँ तो तू आकर न मिलना ॥ १०० ॥

गिर परबत डोलै नहीं, डोलै मंझ दुवार।
प्रीत जे लागी प्रेम की, सो क्यूँ मिटै जमाल ॥१०१॥

वह प्रिय की खोज में पहाड़ों में नहीं डोलता है वरन् उसी के द्वार में हठ कर खोजता है। प्रेम का बंधन कभी छूट नहीं सकता ॥१०१॥

जमला गुडी उड़ावता, तन की करता डोर।
कौ जवाब जब थी गयो, गई बीचथी तोड़ ॥१०२॥

शरीर रूपी डोर से, प्रेम की पतंग मैंने उड़ानी आरम्भ की, पर

प्रिय ने नाता तोड़ दिया (पतंग की डोर ही काट दी) वह जब से गया है, उसका कोई संदेश तक नहीं मिला ॥ १०२ ॥

कुँजड़िन लो परवर कही, भई क्रोध इक बाल ।
मूँड़ मुँड़ा चूनो मली, काजर देत जमाल ॥१०३॥

शाक बेचने वाली ने एक स्त्री को देखकर कहा 'परवर' चाहिए। इसे उसने अपमान समझा, उसने भर्त्सना ही नहीं कि अपितु सर मुंडा कर उसके कालिख भी पोता। उसने 'परवर' का अर्थ दूसरे का पति समझा जो कि गाली भी हो सकती है ॥ १०३ ॥

पूरी माँगति प्रेम सो, तजी कचौरी प्रीत।
बराबरी के नेह में, कह जमाल का रीत ॥१०४॥

वह नायिका कचोड़ी न चाहकर पूरी मांगती है। बड़ा बड़ी (एक सूखी तरकारी) के प्रेम के कारण वह इस प्रकार क्यों आचरण कर रही है ? ॥ १०४ ॥

गूढ़ार्थ— वह नायिका अपने पति से पूरी (पूर्ण) प्रीति माँगती है, वह कचौरी (अधूरी) नहीं चाहती। बराबरी के (समान) प्रेम में पूर्णता ही होती है।

त्रिपुर अटाँ चढ़ि चाह भरि, बीन बजावति बाल ।
उतरि चन्द चमक्क लख, कारण कवन जमाल ॥१०५॥

वह बाला, अत्यन्त उल्लास में अटारी पर चढ़ कर बीन बजाने लगी, पर ज्योंही उसने चन्द्रमा की ओर देखा, उतर कर क्यों नीचे चली आई ? ॥ १०५ ॥

गूढ़ार्थ—विरहिनी बाला की बीणा सुनकर चन्द्रमा का बाहन मृग ठहर कर सुनने लगा। यह देखकर बाला ने सोचा कि अरे! अब तो रात्रि समाप्त ही न होगी, इसलिए वह नीचे उतर आई।

चन्द्र ग्रहण सब जग लगौ, लोग करत बहु दान।

सुन्दर लौंग लुटावती, कह जमाल का जान ॥१०६॥

चन्द्र ग्रहण लगने पर, लोग बहुत दान कर रहे हैं, पर वह सुन्दरी लवँग क्यों लुटा रही है? ॥ १०६ ॥

इसी भाव के पाठांतरित दोहे—

चन्द्र ग्रहन काशी लख्यो, लोग देत धन माल।

विरहिन लौंग देत है कारन कौन जमाल ॥ १०७ ॥

चन्द्र ग्रहण जब होत है, सब देत धन माल।

एक तिया ने लौंग दीन, कारन कौन जमाल ॥ १०८ ॥

चन्द्र ग्रहण जब होत है, दुनी देत है जमाल।

विरहिण लोंग ज देत है, कारण कोण जमाल ॥ १०९ ॥

गूढ़ार्थ—विरहिणी चन्द्र की मादक चाँदनी के कारण बहुत दुःखी रहा करती है, वह जब चन्द्र को ग्रसा हुआ देखती है तो सोचती है कि मैं मंत्रित लवँग फेंक कर इस चन्द्र को सदैव के लिये ग्रसित बना दूँ।

बिनहिं मौलिधड़ लिखति लखि, निज आँगन मँह बाल।

लवँग पुष्प चहुँ वोर धरि, कारण कवन जमाल ॥११०॥

जब उस बाला ने अपने आँगन में विना मस्तक की देह की आकृति को लिखा देखा तब उसने किस कारण से उसके चारों ओर लवँग पुष्प धर दिये? ॥ ११० ॥

गूढ़ार्थ—केतु के चित्र के चारों ओर वह लवँग धर कर, तंत्र द्वारा चन्द्रमा को केतु द्वारा ग्रसित कराना चाहती है। इस प्रकार वह विरहिणी चन्द्रमा को नष्ट करना चाहती है।

बायस पायस देति नित, पुनि पैजनी सुजान।
मणि में मण्डित चोंच करि, कह जमाल का जान ॥१११॥

वह चतुर स्त्री नित्य कौए को खीर खिलाती है। उसको पैंजनी पहना कर उसकी चोंच पर मोती जड़ती है। वह क्या जानकर ऐसा करती है? ॥ १११ ॥

गूढ़ार्थ—संदेश वाहक कौए का आदर सत्कार कर रही है।

पिक दुरवति जिहिं पीर सो, कर बायस प्रतिपाल।
काक छोड़ि भजिपीक पुनि, कारण कवन जमाल ॥११२॥

वह नायिका कोयल को दुतकार देती है और कौए से प्रीति पालती है। पर वह पुनः कौए को छोड़कर कोयल से प्रेम करती है। इसका क्या कारण है? ॥ ११२ ॥

गूढ़ार्थ—विरहावस्था में नायिका कोयल की कूक सुनकर व्यथित होती है, इससे वह उसे भगा देती है और कौए से संदेश भेजने के लिए उससे प्रीति रखती है। पर पिय के आ पहुँचने पर वह कौए को छोड़कर पुनः कोयल की कूक पर मुग्ध हो जाती है ॥ ११२ ॥

कोयल की धुनि सुनत मन, गुनति मुदित ह्वै बाल।
पुलकित होति पसीजती, कारण कवन जमाल ॥११३॥

वह बाला कोयल की कूक सुनकर, कुछ स्मरण कर मन ही मन

पुलकित होती है पर फिर क्षण भर में वह उदास क्यों हो जाती है ? ॥ ११३ ॥

गूढ़ार्थ—कोयल की कूक सुनकर वह पिय का स्मरण कर पुलकित होती है, पर प्रिय के विछोह के कारण फिर दुःखी हो उठती है।

गुन्जन कुञ्जन ते फिर्‌यो, पुन्जन अलि यहि और।
तकि तकि ठकि जकि सी रही, का जमाल करि गौर ॥११४॥

भौंरों का समूह फुलवारी (कुञ्जों) की ओर से इधर क्यों आकर गुञ्जन कर रहा है ? वह बाला भौंरों का यह आचरण देख कर ठगी सी क्यों रह गई है ? ॥ ११४ ॥

गूढ़ार्थ—बाला के कमल-मुख को देखकर भौंरों को भ्रम हो गया। वे कमल समझ कर नायिका के मुख की ओर मुड़ पड़े। वह लीला देखकर वह घबरा गई।

मालिन बेचत कँवल कूँ, वदन छिपावत बाल।
लाज न काहू की करै, कारण कौन जमाल ॥११५॥

मालिन जो किसी से परदा नहीं करती है। कमल के फूलों को, अपना मुख ढाँपकर क्यों बेच रही है ? ॥ ११५ ॥

इसी भाव के पाठांतरित दोहे—

मालिन बेचत कमल को, काहे वदन छिपाइ।
या को अचरज कौन है, कहु जमाल समुझाई ॥११६॥
पानि कमले जो ये कठो, बेचै वदन दुराय।
लाज कौन की करत है, कहि जमाल समुझाय ॥११७॥

गूढ़ार्थ—मालिन को डर है कि उसके चन्द्र-मुख की कांति से कमल मुरझा न जांय, इस हेतु वह मुख ढाँप कर बेच रही है ॥

दध सुत कामण कर लिये, करण हंस-प्रतिपाल ।

बीच चकोरन चुग लिए, कारण कोण जमाल ॥११८॥

वह कामिनी अपने हाथ में मोती लेकर, सरोवर के राजहंसों को चुगाने गई (किंतु वे चुगने से डरने लगे) पर चकोरों ने आकर (झपट कर) किस कारण उन्हें चुग लिया ॥ ११८ ॥

इसी भाव के पाठांतरित दोहे—

करि शृँगार कामिनि चली, हंसा के प्रतिपाल ।

हंसा झिझकि चकोर चुनि, कारण कोन जमाल ॥ ११९ ॥

गोरी दधसुत कर गह्यो, हंस करण प्रतिपाल ।

उडै न हँस चकोर चुग, कारण कोन जमाल ॥ १२० ॥

स्वाति-सुता कर पर धरैं, वदन विलोकति बाल ।

क्षुधावन्त चुगियो नहीं, कारन कौन जमाल ॥ १२१ ॥

राज हँस परसन्स पुनि, मोती चुँगवति बाल ।

बिहँगन बिविध बिधाँई क्यों, कारण कवन जमाल ॥ १२२ ॥

गूढ़ार्थ—नायिका के हाथों में जावक (मेंहँदी) लगी थी। उसके हाथ में मोती, मेंहदी की झलक के कारण अँगारे से ज्ञात हुए, जिन्हें चकोरों ने अंगार समझकर खा लिया, किन्तु राज हंस डर गये और न खा सके ।

उत्तर में जमाल द्वारा कहे जाने वाले दोहे—

अरुणी राची करनं पै, ताकी झिलकत कोर ।

पावक के भोरे भए, तातें चुगत चकोर ॥ १२३ ॥

कामण जावक रच्यौ, दमकत मुगता-कोर।

इम हँसा मोती तजे, इम चुग लिये चकोर ॥ १२४ ॥

चमकत चपला जुगुन युत, छिन २ बिन घन आज।

बिच खिरकिंहि वृषभान की, कह जमाल किहिं काज॥१२५॥

वृष भानु के घर में आज बिना बादल के जुगुनों के सहित बिजली क्यों चमक रही है ? ॥ १२५ ॥

गूढ़ार्थ—राधा, बिना घनश्याम के बार बार झाँक कर बाहर देख रही है। उनकी देह बिजली सी और आँखें जुगुनू सी चमक रही हैं।

घेरत नित मुहीं कुञ्ज में, माई नन्दकिशोर।

दधि माखन को खान हित, कह जमाल करि गौर ॥१२६॥

कृष्ण मुझे नित्य कुञ्जों में माखन और दधि खाने के हेतु क्यों घेर लेते हैं। इसका क्या कारण है ? ॥ १२६ ॥

गूढ़ार्थ—कृष्ण दधि-माखन (अर्थात् गोरस) चाहते हैं। कुञ्जों में वे गो (इन्द्रियों) का रस भला गोपी से क्यों न चाहें, वह तो उनका दान है।

पिचकारी आँखिन लगी, मलति करेजे बाल।

पुनि देखति पुनि मलति हिय, कारण कवन जमाल॥१२७॥

फाग खेलते समय आँखों पर पिचकारी लगी। वह बाला आँखें न मल कर, बार बार उस ओर देखकर क्यों अपने हृदय को थाँमती है ? ॥ १२७ ॥

गूढ़ार्थ—नायक द्वारा पिचकारी की मार खाकर वह बाला मुग्ध होकर अपना हृदय खो चुकी है। वह नायक की ओर देख देखकर अपने मन को सँभालती है। उसे नेत्रों की पीड़ा की चिन्ता नहीं है।

मोर पखा उर बाछरू, गर बैजन्ती माल।
बाल बन्यो नँदलाल छबि, कारण कवन जमाल ॥१२८॥

उस बाला ने, मोर मुकुट, पिताम्बर और गले में बैजयन्ती माला पहन कर क्यों नँदलाल का सा रूप बनाया है ? ॥ १२८ ॥

गूढ़ार्थ—वह बाला स्वयं कृष्ण बन कर पुरुषायित करना चाहती है।

सुवन चुवन बन बिच गई, नचत सिखी लखि बाल।
बौरी दौरी पौरी लो, कारण कवन जमाल ॥१२९॥

वह बाला फूल चुनने के हेतु उपवन में गई, पर वहाँ पर मोर नाचते देखकर, शीघ्र ही लौटकर अपने घर क्यों लौट आई ? ॥१२९॥

गूढ़ार्थ—वर्षा के आगमन सूचक बादलों को छाये देखकर मोर नाच रहा था, जिसे देखकर वह अपने प्रिय के आने की अवधि निकट जानकर प्रसन्न हो, अपने भवन में लौट आई।

बिजना हाँकति चतुर तिय, त्यों त्यों बढ़ि हिय ज्वाल।
पुनि मनहिं मन गुनति कछु, कारण कवन जमाल॥१३०॥

पँखा डुलने पर जब हवा लगी, तो उस स्त्री की हृदय ज्वाला उत्तरोत्तर बढ़ने लगी, तब वह अपने मन में क्या सोचने लगी ? ॥१३०॥

गूढ़ार्थ—विरहिनी की हृदय ज्वाला, पंखे की शीतल समीर पाकर बहुत भड़क उठी। वह स्त्री फिर अपने मन में अपने प्रिय के आने के दिन गिनने लगी।

नितहिं ननद मुख निरखि सखि, अँखिया भरि भरि लेत।
उसँसि उसँसि भामी अजों कह जमाल किहि हेत ॥१३१॥

अपनी ननद का मुख देखकर वह नित्य अपनी आँखों भर लेती

है। अब वह मेरी भाभी रह रह कर क्यों गहरी सांसें भरती है? ॥१३१॥

गूढ़ार्थ--वह विरहिणी भाभी अपनी ननद के मुख में अपने पति (ननद के भाई) की प्रतिमूर्त्ति देख कर व्याकुल हो उठती है।

अति कारी डरवारि झुकि सूझत नहिं कहुँ ठौर।
केहि कारण यह तिय चली, कह जमाल करि गौर॥१३२॥

अति काली भयंकर रात्रि है। अंधकार में कुछ भी सूझता नहीं है, पर वह स्त्री किस कारण से इस समय चली जा रही है॥ १३२॥

गूढ़ार्थ—वह नायिका कृष्णाभिसारिका है।

लखि मृगाँक गति नित कि नित, मृग नैनी मुसकाय।
या में अचरज कौन है, कह जमाल समुझाय॥१३३॥

चन्द्रमा की गति प्रतिदिन वह मृग नैनी देखती है और प्रसन्न होकर मुस्कराती है। चन्द्रमा का क्षय होते देखकर, वह किस कारण ऐसा कर रही है? ॥ १३३॥

गूढ़ार्थ—चन्द्र का क्षय होते देखकर वह समझती है कि अब कृष्ण-पक्ष आवेगा, तब अभिसार करने का अवसर मिलेगा।

इसी भाव का दोहा है—

तजि पूनो की प्रीत तिय, सेइ अमाँवस राति।
अति हर्षित ह्वै पिय निकट, कह जमाल मुसकाति॥१३४॥

त्रसावंत सुन्दर भई, गई सरोवर पार।
सर सूक्यो, आणँद भयो, कारण कोण जमाल॥१३५॥

उस सुंदरी को प्यास लगी, तो वह सरोवर के किनारे गई। पर सरोवर को सूखा देखकर उसे आनंद क्यों हुआ? ॥ १३५॥

इसी भाव के पाठांतरित दोहे—

त्रिसावंत भइ कामिनी, गई ताल ततकाल।
सर सूखत आनँद भई, कारण कवन जमाल ॥ १३६ ॥

सरदै बासर दौरि बिनु, बारस बितति बिशाल।
सुख्यो दिख्यो तीरो हँसी, कारण कवन जमाल ॥ १३७ ॥

गूढ़ार्थ—तालाब को सूखा देखकर उसने पिय के आने की अवधि का अन्त हुआ जान, प्रसन्नता प्रकट की।

इसी भाव का दोहा है—

अवधि दीय है मिलण की, त्यौं आय मिले जु लाल।
सर सूके आणँद भयो, कारण एह जमाल ॥ १३८ ॥

मारुत सुत, अलि, हंस अरु, लिख मन्दिर रंग स्वेत।
चौरँग पौढ़ी चतुर तिय, कह जमाल किहि हेत ॥१३६॥

उस चतुर स्त्री ने अपने धवल गृह में हनुमान, भौंरे और हंस का चित्र बनाया और फिर पलँग पर क्यों लेट रही? ॥ १३६ ॥

गूढ़ार्थ—वह विरहिनी उन्माद अवस्था में है। हनुमान, भौंरा और

हंस उसे दूत से ज्ञात होते हैं। वह इनसे प्रिय संबंधी समाचार सुनने व कहने के लिये पलँग पर लेट गई।

चम्पा हनुमँत रूप अलि, ला अच्चर लिखि बाम।
प्रेमी प्रति पतिया दियो, कह जमाल किहि काम ॥१४०॥

उस प्रेमिका ने अपने पति को पत्र में चम्पा-पुष्प, हनुमान, भौंरा और ला अच्चर क्यों लिखकर दिया ? ॥ १४० ॥

गूढ़ार्थ—प्रेमिका अपना संदेश व्यक्त करना चाहती है कि उसकी और प्रेमी की दशा, चम्पा और भ्रमर-सी हो रही है। दोनों मिल नहीं रहे हैं। इस हेतु वह स्त्री (चम्पा) दूत (हनुमान) से कह रही है कि तूँ जाकर मेरे प्रेमी (भ्रमर) को कह कि मुझे मिलने की लालसा (ला) है। 'ला' का अर्थ यहाँ लाने का भी हो सकता है, मानो दूत से कहती हो कि तूँ जाकर प्रेमी को बुला ला।

वायस राह भुजंग हर, लिखत त्रिया ततकाल।
लिख लिख मेटै सुंदरी, कारण कवन जमाल ॥१४१॥

वह स्त्री कौआ, राहु, सर्प और महादेव का चित्र बनाती है और फिर मिटा देती है। इस प्रकार वह सुंदरी क्यों कर रही है ? ॥१४१॥

इसी भाव का पाठांतरित दोहा—

बायस राहु भुजङ्ग हर, लिखति बाल ततकाल ।
फिरि मेटति फिरि फिरि लिखति, कारण कवन जमाल ॥ १४२ ॥

गूढ़ार्थ—वह विरहिनी नायिका कोयल की कूक, चन्द्र की चाँदनी, मलय समीर और कामदेव के कारण पीड़ित हो गई है । इन से छुटकारा पाने के हेतु वह विरोधी वस्तुओं का चित्र बनाती है । कोयल के हेतु कौआ, चन्द्र को ग्रासने के हेतु राहु, मलय समीर के भक्षण हेतु सर्प और कामदहन के हेतु शंकर का चित्र बनाती है । कुछ भी फल न पाकर वह मिटा देती है पर आशा बँध जाने पर वह पुनः उन चित्रों को बनाती है ।

इसी भाव का दोहा—

पिक ससि समीर मैण डर, खीण भई अति बाल ।
ता पिव दुःख के कारणे मेटत लिखत जमाल ॥ १४३ ॥

जम्बू लहसुन दीन तिहिं, मिर्च लोन करि मेल।
मटकत आई श्याम पहँ, कह जमाल का खेल ॥१४४॥

वह कृष्ण के पास जम्बू, लहसुन, मिर्च और नमक को मिलाकर, इठलाती हुई लेकर आई। इसमें क्या रहस्य है? ॥ १४४ ॥

गूढ़ार्थ—उपर्युक्त वस्तुओं के मिलाने से पेट दर्द की दवा बन जाती है, पर इस संमिश्रण का यहाँ कोई अर्थ नहीं है। यहाँ अर्थ बहिर्लापिका द्वारा लगेगा। आगे वाले दोहों के पठन से स्पष्ट होगा।

कस्तूरी हाँथी मिरगा, लूँमड़ि लिख नँदलाल।
प्यारी प्रति पतिया दियो, कारण कवन जमाल ॥१४५॥

कृष्ण ने अपनी प्यारी को प्रेम पत्र में कस्तूरी से हाथी, मृग और लोमड़ी का चित्र बनाकर क्यों भेजा? ॥ १४५ ॥

गूढ़ार्थ— अर्थ बहिर्लापिका द्वारा लगेगा, आगे देखें।

कुँदरू जल मेवा सजी, भजी कृष्ण चितलाय।
गाय रागनी भैरवी, कह जमाल समुझाय ॥१४६॥

वह चित्त लगाकर, भैरवी गाकर कृष्ण का ध्यान करने लगी। कुंदरूँ, जल और मेवा उसने क्यों एकत्र किया है? ॥ १४६ ॥

गूढ़ार्थ—अर्थ बाहिर्लापिका द्वारा लगेगा, आगे देखें।

मिट्टी लूंदा गादि के, मूरति रच्यो अनेक।
पठ्यो जहँ वृषभानु के, कह जमाल का टेक ॥१४७॥

मिट्टी की कई मूर्त्तियाँ बनाकर, राधा के पास भिजवा दीं। यह सब किस हेतु हुआ? ॥ १४७ ॥

गूढ़ार्थ—अर्थ बहिर्लापिका द्वारा लगेगा, नीचे देखें।

बाहिर्लापिका द्वारा अर्थ—

उपर्युक्त चार दोहों का अर्थ एक ही प्रकार से लगेगा।

सर्व प्रथम तो गोपी कृष्ण के पास आती है। दूसरे स्थान पर प्रिय अपनी प्यारी के लिये पत्र देते हैं। इसके पश्चात कुछ सजाकर राधा एकत्र करती है और कृष्ण का ध्यान करती है। अन्तिम दोहे में राधा के पास कुछ भेजा जाता है।

उपर्युक्त व्यापार में प्रेम संदेश भेजे गये और उनके उत्तर भी प्राप्त हुए हैं। प्रत्येक दोहे के प्रत्येक शब्द के प्रथम अक्षर को मिलाकर पढ़ें, अर्थ स्पष्ट हो जावेगा।

यथा—संदेश आता है—" जल्दी मिलो"

नंदलाल पूछते हैं—"कहाँ मिलूँ ?"

उत्तर मिलता है—"कुँज में"

वृषभानु के यहाँ संदेश जाता है—"मिलूंगा"

जित जित विकसित कंज कलि, तित तित फिर नँदलाल।
तकत जकत कह काह कछु, कारण कवन जमाल ॥१४८॥

जहाँ जहाँ पर नई कलियाँ खिलती हैं वहाँ नंदलाल पहुँच जाते हैं। वे वहाँ जाकर ताकते झाँकते क्यों हैं ? १४८ ॥

गूढ़ार्थ—प्रेमी कृष्ण मधुकर से हैं, जहाँ कहीं भी वे किसी युवती को देख लेते हैं वे वहीं चले जाते हैं।

कभुँ गुलाब कचनार पर, कभुँ सरोज पर भौंर।
कभुँ मालति केतकिहिं पर, कह जमाल करि मौर ॥१४६॥

भ्रमर कभी तो गुलाब, कचनार, कमल पर तो कभी मालती, तकी आदि पर क्यों मँडराता है ॥ १४९ ॥

गूढ़ार्थ—प्रेमी भ्रमर प्रत्येक का मधुपान करने के हेतु डोलता रता है।

मधुकर व्याकुल फिरत चहुँ, थिरत न कोउ कलीन।
कह जमाल मालति बिरह, किंसुक की रस लीन ॥१५०॥

भ्रमर व्याकुल होकर क्यों फिर रहा है? किसी कली पर स्थिर यों नहीं होता, मालती के विरह में किंशुक 'टेसू' का रस क्यों लेना ाहता है? किंशुक को वह कली समझ कर उस ओर नहीं जाता है, अपितु मालती के विरहमें किंशुक को दावाग्नि समझ कर उसमें भस्म ोना चाहता है ॥ १५० ॥

छिनहुँ छिपत नहीं नितहिं इत, उदित सावरो चंद।
तरसत अनँत चकोर कत, कह जमाल इहि फन्द ॥१५१॥

यह साँवला चन्द्रमा किसी दिन भी इस ओर क्यों नहीं आता, बच कि अनेक चकोर इसके फन्दे में फँस कर तरसते रहते हैं। अर्थात् यह साँवरे घनश्याम इस ओर कभी नहीं आते, सभी गोपियाँ इनके ेम में विह्वल रहा करती हैं ॥ १५१ ॥

लटपटाति पग धरति क्यों, बिछुरे यह किमि केश।
चकित सुनत भइ चातुरी, कहहु जमाल बिशेश ॥१५२॥

सखि ने पूछा "तुम्हारे केश बिखरे हुए क्यों हैं और पैर लड़खड़ाते क्यों धर रही हो?" तब वह चतुर स्त्री यह सुनकर अचकचा क्यों गई? ॥ १५२ ॥

गूढ़ार्थ—अभिसारिका अपने रात्रि विहार के पश्चात् लौटी है।

जावक भाल कपोल पिक उर बिन गुणहीं माल।

लाल बन्यो चित्राल सम कारन कवन जमाल ॥१५३॥

प्रिय के भाल पर मेंहदी और कपोलों पर ताम्बूल का रँग लगा है। उसके गले में माला भी नहीं है। इस प्रकार उसका शरीर क्यों चित्रित है? ॥ १५३ ॥

इत आवत उत जात हैं, भक्तन के प्रतिपाल।

बंसि बजावत कदम चढ़ि, कारन कौन जमाल ॥१५४॥

भक्त वत्सल कृष्ण आज इधर-उधर क्यों आ जा रहे हैं? वे कदम पर चढ़कर वंशी क्यों बजा रहे हैं? ॥ १५४ ॥

गूढ़ार्थ—राधा की प्रतीक्षा में कृष्ण अनमयस्क हैं। उसे बुलाने के हेतु वे वंशी भी बजा रहे हैं।

इक को आंखिन डार दी, कान्ह रङ्ग गुलाल।

इक की कर धर कुच मल्यो, कारन कवन जमाल ॥१५५॥

कृष्ण ने एक गोपी की आँखों में गुलाल डालकर उसे थोड़ी देर के लिए अंधी बना दिया और स्वयं अपनी चहेती से विनोद करने लगे ॥ १५५ ॥

कमरि वोढ़ति चतुर सखि, छोड़ दुशाले प्रीत।

बरजै पै मानै नहीं, कह जमाल यह रीत ॥१५६॥

वह दुशाला न ओढ़कर, कम्बल ओढ़ना क्यों पसन्द करती है? समझने पर भी वह कहना क्यों नहीं मान रही है? ॥ १५६ ॥

गूढ़ार्थ—कृष्ण के विरह में राधा प्रिय की कामरी ही ओढ़कर अपने को सुखी मानती है। भला उन्माद ग्रस्त विरहिणी कैसे किसी का कहा माने ?

गजरा गूँध गुलाब के, मालिन ही दिय पानि।
तिय दिय लीलक की छला, कह जमाल का जाँनि ॥१५७॥

उस स्त्री के हाथ में जब मालिन ने गुलाब का गजरा गूँथ कर दिया, तो उसने अपने पैर की जूती से ठोकर मार कर क्यों फेंक दिया ? ॥ १५७ ॥

गूढ़ार्थ—मानिनी नायिका क्रोधवश ऐसा ही करती है।

बेनी गुहँत सु प्रेम सो, देत महावर पाँय।
प्रान प्यारी ढिग श्याम नित, कह जमाल यह काँय ॥१५८॥

श्याम नित्य अपनी प्रेयसि के निकट रहकर उसकी वेणी क्यों गूँथकर, पाँवों में मेंहदी देते रहते हैं ? ॥ १५८ ॥

गूढ़ार्थ—क्षण क्षण में मान करने वाली प्रेयसि के निकट श्याम नित्य रहकर उसे इस प्रकार प्रसन्न रखते हैं।

निपट निकट निसि मुख निरखि, नलिनी नयन री आज।
छटपटाति घर जान हित, कह जमाल किहि काज ॥१५९॥

चन्द्रमा को बहुत शीघ्र उदय होता जानकर, वह कमल नैनी शीघ्र घर जाने के लिए क्यों आतुर होने लगी ? ॥ १५९ ॥

गूढ़ार्थ—रात्री को आया जानकर वह पति से मिलने के हेतु आतुर होकर घर जाने लगी।

नजर बचावहीं सबहिं की, परसत नायन पाँव।
झुकि झुकि कछु कानन कहति, कह जमाल यह काँय ॥१६०

वह नायिका सबकी आँख बचाकर, नाईन के पाँव छूकर, झुककर उसके कानों में क्या कहती है ? ॥ १६० ॥

गूढ़ार्थ—नाइन को दूती बनाकर संदेश भेजना चाहती है।

ग्वारि छबि बारी नई, बृजवारी बे तौर।

मालिन के पग परति क्यों, कह जमाल करि गौर ॥१६१॥

वह व्रज की नव यौवना ग्वालिन, इतनी दीनता से मालिन के पाँव क्यों पड़ रही है ॥ १६१ ॥

गूढ़ार्थ—मालिन के हाथ संदेश भेजना चाहती है।

निसि जागति दिनमें सुवति, बोई पेड़ बबूर।

काटो कदली कंज सो, कह जमाल तकि दूर ॥१६२॥

वह रात्री भर जागती है और दिन में सोती है, इस प्रकार वह प्रकृति विरुद्ध कर्म कर सुखदायी फल क्यों पा रही है ? यह तो ऐसा जान पड़ता है मानों बबूल का पेड़ बो कर केले का फल प्राप्त करना ॥१६२॥

गूढ़ार्थ—वह परकीया रात्री को जाग कर अपने प्रिय के संग रहती है, तो वह रात्री जागरण के हेतु दिन में क्यों न सोवे।

लखि रितुराज न बरजती, कन्तहिँ जात बिदेस।

या में अचरज कौन है, कहहु जमाल बिशेस ॥१६३॥

बसन्त को आया जानकर भी वह अपने विदेश जाते पति को नहीं रोक रही है। इसमें क्या आश्चर्य है ? ॥ १६३ ॥

गूढ़ार्थ—पर पुरुष में अनुरक्त कुलटा नायिका का व्यवहार ऐसा ही होता है।

कहा काम रितुराज से, पियहिँ बन्यो रितुराज।

सोंचब समझब सब सही, कह जमाल बिनु काज ॥१६४॥

वह मुग्धा नायिका बसन्त की अवहेलना कर के अपने प्रिय में बसन्त के समान सभी सुखों का स्रोत पाती है॥ १६४ ॥

आज अमावस, सवन घर है, वर दीपक माल।
मो मन में संकट भयो, कारण कोण जमाल ॥१६५॥

आज अमावस्या है, सब के घरों पर सुहावनी दीपमालिका जग-मगा रही है। पर मेरे मन में क्यों दुःख हो रहा है ? ॥ १६५ ॥

उत्तर में जमाल द्वारा कहा जाने वाला दोहा—

सबके प्रीतम निकट हैं मो प्रीतम नंहिं, लाल।
इण कारण मो चित्त में संकट भयो जमाल ॥ १६६ ॥

आज अमाँवस हे सखी, ससि भीतर नँदलाल।
बीचहिं परिवा परि गयो, कारण कवन जमाल ॥१६७॥

कृष्णचन्द्र के एक गोपी के यहाँ चले जाने पर अन्य सब गोपियों के यहाँ अँधेरा (दुःख) छा गया। पर किस कारण इस अमावस्या के पश्चात् ही प्रतिपदा बीत गई और शीघ्र दूज के चन्द्र की भाँति कृष्ण के दर्शन हो गये ? ॥ १६७ ॥

गूढ़ार्थ— नायिका ने मान किया तो कृष्ण-चन्द्र उसे छोड़कर बाहर चले आये। उनको देखकर सभी गोपियाँ प्रसन्न हुईं। (यहाँ पर मान का होना, परिवा के पड़ जाने से सूचित किया है)

इसी भाव के पाठांतरित दोहे—

आज अमावस सबनि घर, ससि भीतर नँदलाल।
बिच हि परिवा हो गई, कारन कौन जमाल ॥ १६८ ॥
आज अमावस असुभ दिन, छिपे जु रहि ससि लाल।
कबहूँ परिवा ऊलटै, ह्वै है दोज जमाल ॥ १६९ ॥

बिनहिं मेघ गरजत कभूँ, कभूँ बरसत तिहिं ठौर।
कभुँ चमँकति चित चकित करि, कह जमाल कर गौर ॥१७०॥

नायिका के नेत्र बिना कारण ही कभी अपने प्रिय पर कुपित होकर (गरज कर) उसका तिरस्कार कर देते हैं और कभी कभी प्रिय के वियोग में वहाँ अश्रु बरसाते हैं। वही नेत्र उल्लसित होकर कभी मन को उमंगित कर देते हैं॥ १७० ॥

बिकसित कंज कलीन सर, बिकल होति लखि बाल।
सींचति प्रफुल्लित होनँ हित, कारण कवन जमाल ॥१७१॥

वह बाला जिन पुष्पों को खिलने के लिए सींचती रहती है, आज उन्हीं कमलों को सरोवर में खिलते देखकर, क्यों विकल हो रही है ? ॥ १७१ ॥

गूढ़ार्थ—कमलों ने खिलकर प्रातःकाल होने की सूचना दी तो प्रिय से बिछुड़ने के भय ने उस बाला को व्यथित कर दिया।

बन बन उठत दवागि घन, छुनछुन छहरि विशाल।
हरखि हरखि तिय तहँ हँसी, कारण कवन जमाल ॥१७२॥

चारो ओर बन में दावाग्नी को प्रचण्ड रूप से जलते देखकर वह स्त्री वहाँ पर हँस क्यों पड़ी ? ॥ १७२ ॥

गूढ़ार्थ—पलाश के फूलने से दावाग्नी सी चारों ओर दिखाई पड़ती है। वह नायिका पलाश के वन में अपने संकेत स्थल को निरापद हुआ जान उमंगित होती है।

झुलनी लखवति लखित का, का भागति इतराय।
चमकति जनु बिजुरी छुटा, कह जमाल यह काय ॥१७३॥

वह स्त्री कुछ देखकर और अपने नाक में पहिनी झुलनी को दिखाकर, इतराकर, विद्युत के समान क्यों भाग गई ? ॥ १७३ ॥

गूढ़ार्थ—वह नवोढ़ा अपने प्रिय को देखकर तथा अपना शृंगार दिखलाकर, लज्जावश भाग गई ।

नित निशि बसत पिशाच ऊँहिं, बनिक न टिकउ निकेत ।
द्रुत भज भल यदि चहसि तो, कह जमाल इहि हेत ॥१७४॥

हे पथिक, तू उस भवन में न ठहर, वहाँ नित्य रात्री को पिशाच आकर ठहरते हैं । अपना हित चाहता हो तो शीघ्र यहाँ से चला जा ॥ १७४ ॥

गूढ़ार्थ—वह भवन नायिका का संकेत स्थल है । वह पथिक को डराकर भगाना चाहती है ।

घर की गुदरी कहति सब, लखि पंथीके रोज ।
या में अचरज कौन है, कह जमाल करि खोज ॥१७५॥

वह घर में रहने वाली, पथिकों को नित्य क्या सब कह देती है ? इसमें क्या आश्चर्य है ? ॥ १७५ ॥

गूढ़ार्थ—अपने पति-वियोग का रोना रोकर, वह स्त्री परदेसी प्रिय को संदेश भेजना चाहती है ।

जिहि रस तन में चाहती, सो रस मिलियो बाल ।
तबहि सराहत मृत्यु को, कारन कौन जमाल ॥१७६॥

वह बाला जिस प्रेम रस की भूखी थी, वह उसे प्राप्त हो गया । अब जीवन की कोई साध उसके लिए बाकी न बची, अब उसे मर जाने का भी संकोच नहीं है ॥ १७६ ॥

यह सुमेर लखि व्याल तूँ, क्यों दौरत इतराय।
बरजै पै मानै नहीं, कह जमाल समुझाय ॥१७७॥

हे चंचल मन स्त्री के उन्नत स्तनों को देखकर तूँ लोभ वश क्यों माया जाल में फँसना चाहता है ? समझाने पर भी क्यों नहीं मान रहा है ? ॥ १७७ ॥

सजी सोलह, बारह पहरि, चढ़ी अटा एक बाल।
उतरी कोयल बोल सुण, कारण कोण जमाल ॥१७८॥

वह बाला सोलह शृंगार और बारह आभूषण से सजकर अटारी पर चढ़ी, पर कोयल की कूक सुनकर क्यों उतर गई ? ॥ १७८ ॥

गूढ़ार्थ—कोयल की कूक ने विरहाग्नी को भड़का दिया इसलिए वह व्यथित होकर नीचे उतर आई।

रैण तिमहले जा चढ़ी, चम्पक बरणी बाल।
सिखी शोर सुनि रो फिरी, कारण कवन जमाल ॥१७९॥

चम्पक वर्ण वाली वह बाला रात्री को तिमञ्जिले पर चढ़ी पर मोर का कूजन सुनकर, रोकर नीचे क्यों उतर आई ? ॥ १७९ ॥

गूढ़ार्थ—मोर का कूजन सुनकर, विरह व्यथा बढ़ गई अतः वह स्त्री नीचे अपने महल में आ गई।

नागरी सब गुण आगरी, नैनन अंजन देत।
शीस महल भज कान्ह लखि, कह जमाल किहि हेत ॥१८०॥

वह चतुर नायिका, आँखों में अंजन दे रही थी। उसने कृष्ण को आते देखा तो शीस महल में क्यों भाग गई ? ॥ १८० ॥

गूढ़ार्थ—विनोद प्रिय नवोढ़ा शीस महल में जब खड़ी हुई होगी तब

चारों ओर लगे दर्पणों में उसका प्रतिबिम्ब पड़ा होगा और कृष्ण उसको शीघ्र खोज नहीं पा सके होंगे।

सागर तट गागर भरति, नागरि नजरि छिपाय।
रहि रहि रुख मुख लखति क्यों, कह जमाल समुझाय॥१८१॥

वह स्त्री सरोवर तट पर अपनी गागर भरते समय सबकी आँख बचाकर, बारबार अपना मुख पानी में क्यों देखती है? १८१॥

गूढ़ार्थ—वह अपने मुख पर पड़े पिय के दंतक्षत के चिन्ह सबकी दृष्टि छिपा कर, पानी में देख रही है।

अगर चँदण की सिर घड़ी, बिच वींटली गुलाल।
एक ज दरसण हम कियो, तीरथ जात जमाल॥१८२॥

अगर और चन्दन के दो घड़े, जिन के मध्य में गुलाल (लाल रँग) की वींटली (गाँठ) थी, ऐसे दृश्य का तीर्थ यात्रा को जाते हुए दर्शन हुआ॥ १८२॥

गूढ़ार्थ—कवि ने किसी स्त्री के अगर तथा चन्दन से चर्चित कुचों को देखा, जिनकी घुँडी लाल रँग से रँगी थीं। श्वेत, श्याम, और लाल रँग से, सौन्दर्य-प्रेमी कवि को त्रिवेणी (गंगा, यमुना और सरस्वती) के दर्शन हो गये, तब भला वह तीर्थ जाने की यात्रा का क्यों कष्ट झेलता?

करि सिंगार पिय पै चली, हाथ कुसुम की माल।
हरी छोड़ हर पै गई, कारन कौन जमाल॥१८३॥

नायिका शृंगार करके अपने पिय से मिलने को चली। उसने हरि पूजन के निमित्त पुष्पों की माला भी साथ में ली। पर किस

कारण वह हरी पूजन को न जाकर, शिव की पूजा करने चली गई ? ॥ १८३ ॥

गूढ़ार्थ—नायिका की इच्छा हरी पूजन की थी, पर इसी बीच में प्रिय के चले जाने का संदेश मिला तो विरहाग्नी के कारण पुष्पमाल जलकर भस्म हो गई। इसी भस्म को चढ़ाने वह शिव मन्दिर की ओर गई।

तिय पिय आवन खबरि सुनि, बिपिन चली ततकाल।

पूजन पिनाकि अर्ध निशि, कारण कवन जमाल ॥१८४॥

प्रिय आगमन का संदेश पाते ही वह नायिका उसी क्षण अर्द्ध रात्री को शिव को पूजने क्यों गई ? ॥ १८४ ॥

गूढ़ार्थ—शिव मन्दिर दोनों प्रेमियों का संकेत स्थल है।

कर त्रिशूल अँग छार मलि, जटा रचि पुनि व्याल।

चली मनावन श्याम को, कारण कवन जमाल ॥१८५॥

अपने हाथ में त्रिशूल लेकर अँगों पर भस्म रमाकर और सर्प की जटा बनाकर, वह कृष्ण को मनाने के लिए इस प्रकार वेश बनाकर क्यों गई ? ॥ १८५ ॥

गूढ़ार्थ—वेश इस लिए बनाया कि यदि कृष्ण न मानें तो संन्यासिनी हो जाऊँगी।

सिव-अँग-भूषण कर ग्रहे, वण बैठी यों बाल।

पिय कारण विग्रह करैं, कारण कवन जमाल ॥१८६॥

प्रिय के न आने पर, वह बाला त्रिशूल धारण कर, मूर्त्तिवत् क्यों बैठी है ? ॥ १८६ ॥

गूढ़ार्थ—प्रिय की प्राप्ति के लिए वह तप करना चाहती है।

कहिं घहरत बरसत कहीं, कहीं ठहरत घन जाय ।

ये करणी इन कीह क्यों, कह जमाल समुझाय ॥१८७॥

ये बादल (घन) कहीं पर गरजते हैं, तो अन्य स्थान पर जाकर वर्षा करते हैं और फिर कहीं पर जाकर ठहरते हैं। इन बादलों का ऐसा व्यवहार क्यों है ? ॥ १८७ ॥

गूढ़ार्थ—इन बादलों का नाम भी घन है, इसलिए ये घनश्याम का अनुसरण करते हैं, जो कि सदा मधुकर की भाँति स्थान स्थान पर भटकते रहते हैं।

छिप छिप लखवत पत्र द्रुम, जहाँ रही इक बाल ।

पुनि ओड़हुल के पुष्प वहि, कारण कवन जमाल ॥१८८॥

नायक छिप छिप कर लता कुञ्ज में खड़ी एक बाला को देख रहा था। इस पर दूती ने क्यों कहा कि "वहाँ लताकुञ्ज में ओड़हुल के पुष्प भी हैं" ॥ १८८ ॥

गूढ़ार्थ—दूती ने नायक को इंगित किया कि तुम जाकर उस बाला को मनाओ वह अवश्य तुम्हें प्राप्त होगी। (तांत्रिक लोग ओड़हुल के पुष्पों को चढ़ाकर देवी को प्रसन्न करते हैं)

कहँ बोई जाँमी कहाँ, कहँ फैली तिहिं बेल ।

कहँ लागी फूलन फलन, कह जमाल का खेल ॥१८९॥

प्रीति रूपी बेल, प्रिय के दर्शन होने पर नेत्रों में उपजती है, हृदय में अंकुरित होती है और सम्पूर्ण शरीर पर प्रेम का आधिपत्य हो जाता है। प्रीति का रसास्वादन भी किसी अन्य स्थान पर होता है। इस बेल की बड़ी विचित्र गति है ॥ १८९ ॥

कँपि कँपि उठति कुमोदिनी, छिन छिन दिनहिं विशाल ।
उदति कलानिधि होन गुनि, कारण कवन जमाल ॥१६०॥

वह कोमलांगी क्षण क्षण में, दिन को व्यतीत न होते देखकर काँप जाती है । अपने प्रियतम के मिलने के हेतु वह रात्रि की प्रतीक्षा बहुत उत्कंठित होकर कर रही है ॥ १६० ॥

हिय हुलसति बिहँसति बिहँसि, चलो कन्त पहँ बाल ।
लौट परी लखि जुगल छबि, कारन कवन जमाल ॥१६१॥

वह बाला अति उमंगित होकर हँसती हुई अपने प्रिय के पास गई और वहाँ दोनों (नायक और अन्य नायिका) को देखकर वह (अन्य संभोग दुःखिता) बाला लौट आई ॥ १६१ ॥

विरहनि कहि इतनीं घनीं, मैं न मंगला लाल ।
भिक्षा माँगत देत नहीं, कारन कौन जमाल ॥१६२॥

नायिका अपने प्रिय को भिक्षा माँगने पर भी प्रेम-दान नहीं कर रही है । और कहती है कि, हे प्रिय, मैं सुखप्रद (मंगला) नहीं हूँ, आपकी इतनी प्रीति ही मेरें लिए पर्याप्त है ॥ १६२ ॥

गूढ़ार्थ—अन्य संभोगदुःखिता नायिका मान कर बैठी हैं, और अपने प्रिय को उपालम्भ दे रही है ।

प्रीतम नहिं कछु लखि सक्यो आलि कही तिय कान ।
नथ उतारि धरि नाक तँ, कह जमाल का जान ॥१६३॥

सखी ने नायिका के कान में जो कहा, उसको प्रिय न जान सका । नायिका ने अपने नाक के नथ को क्यों खोल दिया ? ॥१६३॥

गूढ़ार्थ—नायिका के अधरों पर नथ को झूलते देखकर [illegible]

होता था मानों अधर रस की रक्षा के लिए ताला लगा हो। नथ अधर रस के पान में बाधक है ऐसा भ्रम नायक को होते देखकर, सखीने नायिका से नथ हटा देने को कहा।

गलनि गलनि गरकि गइ, गति गोमति की आज।

बिकल लोग यह तिय खुशी, कह जमाल किहि काज ॥१६४॥

गोमती किनारे की भूमि बाढ़ के कारण बह गई है। सभी निवासी बहुत व्यथित हैं, पर यह स्त्री, प्रसन्न क्यों है ? ॥ १६४ ॥

गूढ़ार्थ—उसे अपने प्रिय के मिलने का अवसर मिल गया क्योंकि सभी लोगों का ध्यान बाढ़ की ओर बँट गया है।

हती छछुन्दर पौरि पै, रविवासर तिय जानि।

भूमि खोदि पुनि गाड़ दी, कह जमाल सुख मान ॥१६५॥

रविवार को द्वार पर छछुन्दर को जब उस स्त्री ने देखा तो शकुन देखकर (जानकर) उसे भूमि में खोदकर गाड़ दिया ॥१६५॥

नैन किलकिला पंख पल, थिरकि तरुणि तन ताल।

निरखि पर्यो बिबि मीन तकि, फिर निकस्यौ न जमाल ॥१६६॥

उस तरुणी का नेत्र कौड़िया (किलकिला) पक्षी है, जिसके पंख, उसके नेत्र की पलकें हैं। वह पक्षी सरोवर में दो मछलियों को देखकर उनको पकड़ने झपटा, पर वह उनको देखते ही रह गया उनको पकड़ न सका ॥१६६॥

इसी भाव के पाठांतरित दोहे—

नैन किलकिला पंख पल, थिरक्यौ तरुनि-ताल।

निरखि गिर्यो छबि मीन कौं, निकस्यौ नांहि जमाल ॥१९७॥

अलक जु लागि पलक सूँ, थिरक तरण-तक ताल।
निरखि गरे छबि मीन सूँ, फिरि निकसे न जमाल ॥१९८॥
नैन कौड़िया पंख पल, थिरकि तरुनि-तन-ताल।
निरखि परे बिबि मीन तकि, फिर निकसे न जमाल ॥१९९॥
नैन किलकिला पंख पल, थिरक्यौ तरुनी-ताल।
निरखि परे छबि मीन लखि, अजहु न कढ़े जमाल ॥२००॥

गूढ़ार्थ—सरोवर के पानी में जब उस मीनाक्षी ने अपने नेत्रों के प्रतिबिम्ब को देखा तो उसे दो मछलियाँ पानी में देख पड़ीं। वह इन मछलियों को आँख गड़ाकर देखती ही रह गई ॥२००॥

अलक जु लागी पलक सूँ, देख एल के ताल।
दोय बगला एक माछली, दोय दुख भए जमाल ॥२०१॥

पलकें अलकों को छू रही हैं (अर्थात् नेत्र खुले हैं)। सरोवर में एक मछली को दो बगुले पकड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं पर सफल न होने पर दोनों दुखी हुए ॥२०१॥

गूढ़ार्थ—नायिका के नेत्र का प्रतिबिम्ब दोनों बगुलों को मछली सा दिखाई पड़ा, पर इस मछली को पकड़ न सकने के कारण वे दोनों दुःखी हुए।

जमला, ढूँढ़ण हूँ[1] गई, भूल पड़ी एक[2] ताल।
एक कँवल, दो पाँखड़ी, बीचों बीच[3] जमाल ॥२०३॥

पाठ—१—मैं
२—निसि
३—जा में छिपे

मैं अपने प्रियत्तम को खोजने गई तो भ्रमवश सरोवर में जाकर देखने लगी। वहाँ पर दो पँखुड़ियों के मध्य में एक कमल था और वहीं प्रिय का दर्शन मैंने पाया ॥२०३॥

गूढ़ार्थ—नेत्र कमल से हैं और पलकें पँखुड़ियाँ हैं। सरोवर में जब ऐसे नेत्र का प्रतिबिम्ब देखा तो अपने नेत्रों में बसे प्रियतम का दर्शन उसे प्राप्त हुआ।

गज बर कुम्भहिं देखि तनु, कृशित होत मृगराज।
चन्द लखत बिकसत कमल, कह जमाल किहि काज ॥२०३॥

हाथी के कुंभस्थल को देखकर, सिंह दुबला क्यों हो रहा है? और चन्द्रमा को देखकर कमल क्यों विकसित हो रहा है? (इन विपरीत कार्यों का क्या कारण है?) ॥२०३॥

गूढ़ार्थ—नायिका के हाथी के कुंभस्थल से स्तनों को बढ़ते देखकर सिंह अर्थात् कटि प्रदेश दुबला हो गया है। नायिका के चन्द्रमुख को देखकर, नायक के कमल रूपी नेत्र विकसित हो जाते हैं।

चम्पा पर चढ़ि चन्द्र, बिबि खंजन लियहिं ललाम।
झुँकि झाँकति छिपि गोप गृह, कह जमाल किहिं काम ॥२०४॥

चम्पा के पेड़ पर चन्द्रमा चढ़कर, दो खंजन पक्षी को लिए, उस गोप गृह में क्यों छिपकर झाँक रहा है? ॥२०४॥

गूढ़ार्थ—चम्पक वर्णी नायिका का मुख चन्द्र है और उस के दो नेत्र खंजन पक्षी हैं। वह छिपकर गोप गृह में झाँक कर कृष्ण को खोज रही है।

चलत थकत नहिं भखत कछु, नहिं सोवत दिन रैण।
मृग नैनी लखि छीजती, कहँ जमाल का बैण ॥२०५॥

वह मृग नयनी नायिका अपने घर के चरित देखकर अति दुःखित हो गई है। वह न तो कुछ कहती है और न कभी सोती है। कुछ (गुप्त-प्रेम) देख देख कर क्षीण होती जा रही है ॥२०५॥

ललना ललना में रहति, ललना लखि घबराय।
का ललना ललनान बिच, कह जमाल यह काय ॥२०६॥

वह स्त्री उन स्त्रियों के मध्य में रहती है तो उसकी सुंदरता को देखकर वे सब घबराती हैं। डाह वश वे स्त्रियाँ ऐसा कर रही हैं ॥२०६॥

लालन लाल मराल पिक, चको चका पोषैन।
सदा सारिका सुकहूँ राखि, कह जमाल का चैन ॥२०७॥

हंस, कोयल, चकवा-चकवी और सुक-सारिका को पाल पोष कर, कृष्ण क्या सन्तोष पाते हैं ? ॥२०७॥

गूढ़ार्थ—अपनी प्रिया के विरह में इन पक्षियों को पालकर, उन में अपनी प्रिया की वृत्तियाँ पाकर वे सन्तोष पाते हैं। हंस में प्रिया की गति का, कोयल में उसकी वाणी का, चकवा-चकवी में उसके नेत्रों का और सुक-सारिका में प्रिया की नुकीली नाक का सौन्दर्य देखकर वे सुखी होते हैं।

खंजन गंजन नैन तिय, खंजन की करि प्रीत।
बिहँगन और विहाइ क्यों, कह जमाल का रीत ॥२०८॥

नायिका के नेत्र खंजन पक्षी से भी बढ़कर सुंदर हैं इस पर भी उसने खंजन को क्यों पाल रखा है और अन्य पक्षियों को क्यों उड़ा दिया है ? ॥ २०८ ॥

गूढ़ार्थ—अन्य पक्षी (तोता, मैना, सारिका आदि) रात्रि में नायिका के प्रेमालाप को सुनकर रट लेते हैं और दिन में गुरुजनों के बीच सब कह देते हैं, इसलिए इनको नायिका ने उड़ा दिया और अपने मनोविनोद के लिए खंजन को ही पाल रखा।

कौन सिखावति का सिखति, का आवति का जाति।
भोरहिं इक मृग नैनि उत, कह जमाल का बाति ॥२०६॥

प्रातःकाल वहां पर एक मृग-नयनी नायिका किसके सिखाने पर आती रहती है? ॥ २०६ ॥

गूढ़ार्थ—नायिका दिवाअभिसारिका है।

गौरी गा गौरी गई, गौरी पुजन उताल।
सा गौरी औरी भई, कारण कवन जमाल ॥२१०॥

वह स्त्री गौरी राग गाकर, पार्वती की पूजा करने तत्काल गई और वहां अपने प्रियतम को देखकर वह सुन्दरी अति प्रसन्न हो कुछ और ही हो गई ॥२१०॥

पीरी लखि पीरी उठी, पीरी लगी पिराय।
पीरी कहँ पीरी परी, कह जमाल समुझाय ॥२११॥

नायिका ने (जब श्वेत बालों को देखा तो) बुढ़ापा आया जानकर दुखित हुई। वृद्धावस्था का विचार उस प्रिया को कृशित कर पीली करने लगा ॥२११॥

बार बार बहु बार बधु, बारहिं गिन अकुलाय।
खंजन पुंजन पेखि क्यों, कह जमाल समुझाय ॥२१२॥

शरद ऋतु को आया जानकर (खंजन शरद ऋतु में दिखाई

पड़ते हैं) वह स्त्री अपने प्रिय के आने की अवधि निकट जानकर, बार बार उत्कंठित होकर कई बार दिन गिनती है ॥२१२॥

गिन गिन घरि घरि घरहिँ घरि, रहि रहि होत अचेत ।
चितवति चहुँ चंपक बरणि, कह जमाल किहिं हेत ॥२१३॥

अपने प्रिय की प्रतीक्षा में, वह चम्पक वर्ण सी देह वाली विरहिणी, प्रत्येक घड़ी अवधि के दिन गिनती रहती है और रह रह कर अचेत हो जाती है ॥ २१३ ॥

मनहीं मन लखि बढ़ति नित, तनहीं तन झिझिकाय ।
गनहीं गन रोवति हँसति, कह जमाल यह काय ॥२१४॥

विरहाग्नि को बढ़ते देखकर वह नायिका व्यथित होकर चौंक उठती है । प्रिय के आने के दिन गिन कर प्रसन्न होती है और कभी रो पड़ती है ॥ २१४ ॥

गुहि गुहि माल गुलाब की, बाल देति क्यों तोरि ।
पुनहिं गुहति तोरति पुनहिं, गुहति जमाल बहोरि ॥२१५॥

वह बाला गुलाब की माला गूँथकर पुनः क्यों तोड़ देती है और फिर गूँथती है, तोड़ती है । ऐसा वह बार बार क्यों कर रही है ? ॥२१५॥

गूढ़ार्थ—जब उसके मन में प्रिय के आने की आशा बँधती है तो वह माला गूँथती है पर निराश हो जाने पर तोड़ देती है ।

का बीनति कीजति कहा, का देखति अकुलायँ ।
स्रवन पसारतिं सुनति का, कह जमाल यह कायँ ॥२१६॥

वह क्या बीन (चुन) रही है ? क्या कर रही है ? व्याकुल होकर किसको देख रही है ? कान धर कर क्या सुन रही है ? ॥२१६॥

गूढ़ार्थ—अभिसारिका संकेत स्थल पर पहुँच कर प्रिय का पथ व्याकुल होकर देख रही है। आहट सुनने के लिए कान धरकर सुन रही है। वहाँ ठहरने के ब्याज से पुष्पों को चुनने का बहाना कर रही है।

मृग नैनी पहिरति धरति, कंचुकि झुकि जल माहिं।
सींचति हहरति मनहिं मन, कह जमाल यह काहिं ॥२१७॥

सरोवर में स्नान करती हुई वह मृगनयनी नायिका अपने कुचों पर पड़े नखक्षत को देखने के लिये कंचुकी खोलती है। कुछ स्मरण कर वह मनही मन रोमांचित हो जाती है और पुनः पहिन लेती है। जल में झुक कर वह मुग्धा इस प्रकार लीला कर रही है ॥ २१७ ॥

चूमति कभुँ चित चाह सो, कभुँ गर मेलति धायँ।
कभुँ दूरहिं धरि लखि झखति, कह जमाल यह कायँ ॥२१८॥

अपने प्रिय के चित्र को वह कभी चूमती है, कभी दौड़कर गले लगाती है और कभी दूर रखकर उसे देखती है और खीजने लगती है ॥ २१८ ॥

कभुँ जोरति तोरति कभूँ, कभुँ बोरति जलमाहिं।
कभुँ लखि हृदै लगावति, कह जमाल यह काहिं ॥२१९॥

अपने प्रिय से प्राप्त पुष्पहार को कभी वह बिखेरती है, कभी गूँथती हैं, कभी देखकर हृदय से लगाती हैं, और कभी उसे ताजा रखने के लिए जल में डुबाती है ॥ २१९ ॥

बार बार पहिरति धरति, हीरा हारहिं हेर।
मृगनैनी दिन रैन, क्यों, कह जमाल का फेर ॥२२०॥

अपने प्रिय से प्राप्त हीरक हार को वह कभी पहनती है तो

कभी उतार देती है, हार को देखकर प्रिय की स्मृति आजाने पर उसके आनन्द पर (रात्रि सा) अंधकार छा जाता है ॥ २२० ॥

का रोवति का हँसति लखि, का धोवति तहँ बाल ।

का बाँधति खोलति कहा, कह जमाल यह हाल ॥२२१॥

विरहिणी रोती है, पर शुभ शकुनों को देखकर प्रसन्न होती है और अपने बिखरे केशकलाप धोकर, गूँथना चाहती है, पर निराश हो जाने पर केशकलाप को खोलकर पुनः बिखेर देती है ॥ २२१ ॥

काटति का मूँदति कहा, कहा निन्दती बाल ।

बार बार का मींजती, कह जमाल यह हाल ॥ २२२ ॥

वह बाला अपने प्रिय को अन्य से प्रेमालाप करते देख, क्रोध में अपने होंठ काटती है और अपने नेत्र मूँद लेती है । क्रोध के आवेग में आकर वह निन्दा करती हुई अपने हाथ मलती है ॥ २२२ ॥

औरैं नभ औरैं सभै, नभचर लखि लखि बाल ।

ऊबति नभ नभ जानि क्यों, कारण कवन जमाल ॥ २२३ ॥

पावस में आकाशमंडल और सारा वातावरण बदल गया । बादलों को देख देखकर वह बाला, श्रावण मास को निकट ही आया जान कर, अपने प्रिय की प्रतीक्षा में अकुलाकर व्यथित हो उठती है॥२२३॥

मधु बिकस्यो हिसस्यौरि मधु, निकस्यो मधु मधु जाल ।

मधु मलाल तिय हिय लख्यौ, कारन कवन जमाल ॥२२४॥

वसंत ऋतु का आगमन हुआ । सभी पुष्पों में मकरंद उद्भावित हुआ । माधवीलता से मधु टपकने लगा, पर इस रसपूर्ण मादक वातावरण के कारण इस विरहिणी का हृदय व्यथित हो उठा ॥ २२४ ॥

बाल पनैं धोले भये, तरुन पनैं भये लाल ।

बिरध पनैं काले भये, कारन कवन जमाल ॥ २२५ ॥

बचपन में (भोले भाले) नेत्र श्वेत होते हैं। युवा होने पर (चपल अनियारे नेत्र किसी के प्रेम में फँस कर उसकी प्रीति में अनुरंजित होकर) रतनारे हो जाते हैं और वे ही नेत्र वृद्धावस्था में (सभी कुटिलताओं का अनुभव करके म्लान होकर) काले पड़ जाते हैं ॥ २२५ ॥

कानन महँ केहरि मिलन, गयो दौरि मृग आज ।

घेर लई तहँ ब्यालनी, कह जमाल किहि काज ॥ २२६ ॥

आज मृग दौड़कर बन में सिंह से मिलने जब गया तो वहाँ पर सर्पिणी ने उसे क्यों घेर लिया ॥ २२६ ॥

गूढ़ार्थ—मृगनैनी नायिका के नेत्र इतने दीर्घ हैं कि वे कानों तक को छूने जाते हैं, पर बीच में बालों की लट आकर बाधा डाल देती है। (केहरि का अर्थ यहाँ पर अस्पष्ट है ?)

सुक पिक भौंर चकोर पुनि, कोंक कपोत समेत ।

हंस हेरि हरि धरि रहे, कह जमाल किहि हेत ॥२२७॥

तोते, कोयल, भ्रमर, चकोर, कमल, कबूतर और हंस को देखकर कृष्ण (हरि) क्यों धैर्य धरने लगे ? ॥ २२७ ॥

गूढ़ार्थ—कृष्ण अपनी प्रिया की नाक, बोली, बाल, नेत्र, मुख, गर्दन और गति (चाल) की अनुहार इन पक्षियों में पाते हैं। इसलिए उसके वियोग में इन पक्षियों को देखकर धैर्य धारण कर रहे हैं।

इन्दुर कंचुकि पटहिं तर, भाग्यो डर मंजार।
नख छत पर्‌यो जमाल किमि, रही न तनहिं सम्हार ॥२२८॥

सखी ने जब पूछा कि तुम्हारे कुचों पर यह नखक्षत कैसे पड़ गया, तो वह नायिका (सुरति गोपना परकीया) बोली कि बिल्ली के डर से जब नेवला मेरी कंचुकी में छिपने दौड़ा तो मैं अपना शरीर संभाल न सकी और नेवले का नाखून लग गया ॥ २२८ ॥

गोपति प्रण पाली सदै, भवकारी गुण जाल।
एक रदन करिवर जपैं, बाणी अजौं जमाल ॥२२९॥

अपने प्रण को रखने वाले कृष्ण, गुणों के भंडार शंकर, एकदन्त गजमुख गणेश और सरस्वती की मैं आराधना करता हूँ ॥ २२९ ॥

जमला अकबर कर ग्रहे, बरसत कंचन नीर।
हम सिर छत्र दलिद्द का, बूँद न पड़त सरीर ॥३३०॥

दानी अकबर के हाथों से सोना बरस रहा है, पर मेरे सर पर तो गरीबी का ऐसा छत्र लगा है कि मुझे पातशाह की सुवर्ण वर्षा से कुछ भी नहीं मिल रहा है ॥ ३३१ ॥

**इस संबंध की दंत कथा—*

पातशाह अकबर ने जमाल के काव्य पर रीझ कर कवि की सवारी हाथी पर बिठा कर निकाली और ऊपर से अशर्फियाँ न्योछावर कराईं। कवि के ऊपर छत्र था और वहाँ से अशर्फियाँ गिर रही थीं, पर उसके हाथ कुछ न लगा। इस समारोह के पश्चात् जब कवि पातशाह के सन्मुख उपस्थित हुआ तो उपर्युक्त दोहा कहा।

---

* काशी के प्रसिद्ध कलाविद् श्री राय कृष्णदासजी से सम्पादक को इस दंतकथा का बोध हुआ। इस कृपा के हेतु वह उनका कृतज्ञ है।

करज्यो गोर जमाल की, नगर कूप के माँय।

मृग-नैनी चपला फिरैं, पडैं कुचन को छाँय ॥३३१॥

सौन्दर्य प्रेमी कवि की सूफी आत्मा यही अभिलाषा प्रकट करती है कि उसकी कब्र नगर के कूएँ के भीतर बनाई जावे, जहाँ पर कि चपल गति से चलने वाली, मृगनैनियों (पनिहारिनों) के कुचों की छाया (सदैव) पड़ती रहे ॥ ३३१ ॥

परिशिष्ट १

(इसके अन्तर्गत वे दोहे हैं जिनका अर्थ नहीं लग सका या पाठ की गड़बड़ी से स्पष्ट अर्थ नहीं लगाया जा सका ।)

गणेश वंदना—

तिन तिन सत दुइ तीन चर, पाँच छवो सत पाँच ।
बिघ्न हरहु कल्यान करु, भज जमाल करि जाँच ॥३३२॥

सरस्वती वंदना—

तिन तिन सत अठ दुइ सत, दुइ अठ दुइ पँच एक ।
तीन पुनहिं मम कंठ मँह, कह जमाल करि टेक ॥३३३॥

लक्ष्मी वंदना—

तिन तिन सत सत दुइ इक, छौ पाँचो करि ध्यान ।
नासहु दुख दारिद सबै, कहत जमाल सुजान ॥३३४॥

शिव वंदना (?)—

तिन तिन सत छौ पाँच अठ, तीन एक पँच तीन ।
छवो सात चर ध्यान धरि, कहत जमाल प्रवीन ॥३३५॥

दुर्गा वंदना (?)—

तिन तिन सत पँच तीन चर, सात दुई दुइ तीन ।
ऐक अङ्क यहि भाँति लिखि, सुकवि जमाल प्रवीन ॥३३६॥

उमड़ि घटा घन देखि कै, चढ़ी अटा पर बाल ।
मोतिन लर मुख में लई, कारन कौन जमाल ॥३३७॥

जलज जलज दृग कहँ जलज, कर जल जाननि बाल ।
जलज जलज पति जोह कति, कारण कवन जमाल ॥३३८॥
छुन छुबि वारी श्याम कहँ, दिखै कितारी जाल ।
कहै यहै पनिहारि की, रीझेउ जाइ जमाल ॥३३९॥
भूपर की फरसी तजी, ऊपर कौल जगाय ।
का लीला करती तिया, कह जमाल समुझाय ॥३४०॥
जमला बैठो चौतरे, नयण गए टँकसाल ।
अँगुठी कर ही रही, गया नगीना लाल ॥३४१॥
जमला जात तँबोलियो, उलटै पलटै पान ।
अपणा सांई कूँ यूँ मिलै, ज्यूँ जेह कुन में कबाण ॥३४२॥
या तन की मनिया करूँ, मन की डोरी लाल ।
... ... ये फेरत सदा जमाल ॥३४३॥

परिशिष्ट २

(इसके अन्तर्गत वे दोहे और सोरठे हैं जो जमाल द्वारा रचित कहे जाते हैं और जमाल के दोहों में संगृहित मिलते हैं, पर कवि की छाप "जमाल" न होने के कारण इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है)

तिस जू लागी तीस की, तिस बिन तिस न बुझाय ।
आन मिलाओ तीस को, तिस देखै तिस जाय ॥३४४॥
दीन्हों होय सुपाइये, कहते वेद पुरान ।
मन दे पाई बेदना, वाह हमारे दान ॥३४५॥

और अगन मेटत सुगम, बिगरत बरसत तोय।
बिरह अगन विपरीत गति, घन तै दूनी होय ॥३४६॥
चित चकमक छतियाँ पथर, काम अगनि कँप गात।
नैन नीर बरखत नहीं, तो तन जर बर जात ॥३४७॥
रगत मांस सब भख गयो, नेक न कीनि कानि।
अब बिरहा कूकर भयो, लाग्यो हाड़ चबानि ॥३४८॥
जहाँ इकलो मन जात है, वहाँ लौ ये तन जाय।
तौ या पापी बिरह के, बस ह्वै मरे बलाय ॥३४९॥
नेह नरवा से में चलत, चख तुरंग अभिराम।
व्रज भूखन गाहक्क लखत, वाहक फेरत काम ॥३५०॥
बिरह अगिन विपरीत गति, कहो न जानै कोय।
दूर भये देही जरै, निपटै सीरी होय ॥३५१॥
जे नित देखे चाहिए, ते नैनन ते दूरि।
असनेही अन भावते, रहै निकट भरपूरि ॥३५२॥
एक कला धर सिर धरत, तन विष जरन सिरात।
चंद मुखि चित में बसत, तातै मन न जरात ॥३५३॥
सेज ऊजरी कुसुम रचि, और ऊजरी रात।
एक ऊजरी नारि बिन, सबै ऊजरे जात ॥३५४॥
चंद मुखी चित चोरिये, दिनकर दुख दै मोहि।
जब निसि तारा देखियै, तब निसि तारा होहि ॥३५५॥
प्रीतम भँवर वियोग को, सुन लीजो यह बात।
मुख तो पीरो ह्वै गयो, श्याम भयो सब गात ॥३५६॥

जो संग्रहौ तौ तन दहै, तजौं तो प्रेमहिं लाज।
भई छुछुंदर साँप की, नवल विरह पिय बाज ॥३५७॥
अवधि बीति जोवन बिते म्हेर करो मन माहिं।
जिय की जिय में रहत हैं, ज्यौं कूप की छाहिं ॥३५८॥
बिरह सकति लंकेस की, हिये रही भर पूरि।
को ल्यावै हनुमंत ज्यौं, सजन सजीवन मूरि ॥३५९॥
सीतकाल जल मांझ तें, निकसत बाफ सुभाइ।
मानहुँ कोऊ बिरहनी, अबही गई अन्हाइ ॥३६०॥
जरती बरती हौ फिरी, जलधर दौरी जाऊँ।
मो देखत जलधर जरै, जरती कहाँ समाऊँ ॥३६१॥
पिय बिन दिया न बारिहौं, मो अंधियारै सुख्ख।
करि उजियारो हे सखि, काको देखूं मुख्ख ॥३६२॥
जब सुधि आवत मित्र की, बिरह उठत तन जागि ॥
ज्यों चूनें करि काँकरी, जब छिटको तब आगि ॥३६३॥
हरि बिछुरत कुंजन मही, लगी बिरह की लाय।
हम जलि बलि कवैला भई, द्रुम कठोर हरियाय ॥३६४॥
लाल तुम्हारी देखियत, सब काहू सो प्रीति।
जहां डारिये तहँ बढ़ै, अमर बेलि की रीति ॥३६५॥
चारि चतुष्पद चारि पग चारि फूल फल चारि।
पूरब पूरे पुन्य बिन मिलै न ऐसी नारि ॥३६६॥
राजा सरिता एक है ये सब ही को देत।
करन कुभंज को जितैं सो ते तो भरि लेत ॥३६७॥

बिथुरारे कच बाल के छुटे छुवत छवानि।
भीजै कहौ न कौन के तन मन इन धुरवानि ॥३६८॥
करे नेह असवार कह वदन मंजिल ठहराइ।
ककरीलीं छतिआँ गयो मन तुरंग तरवाइ ॥३६९॥
लसति ललित बिंदुली चिबुक तम छबि केर परैल।
गाडि है जनु मेख दै जग चितवनि चूरैल ॥३७०॥
बनज सिखौ निकस्यौ बनज बिकस्यौ बनज निशंक।
बनज माल तुव बिनु लगति बनज माल हरि अंक ॥३७१॥
मन मंजूस गुन रतन है, चुपक दई हटताल।
गाहक बिन न खोलिये, कूँजी सबद-रसाल ॥३७२॥
मन के मनसूबा सबैं, मन हीं मांहि बिलाहिँ।
ज्यों पानी के बुलबुला, उठि उठि बुझि बुझि जाहिँ ॥३७३॥
जोबन की हूँ जिह करूँ, तन-मन करूँ कबाण।
नैणा के दो सर करूँ, जो कोय मिलै सुजाण ॥३७४॥
प्रथम समै कुच ऊगते, कंचुकि कसण बणाय।
मनु अनंग तंबू दिये, अरि-गुंजण कूँ आय ॥३७५॥

सोरठे—

मैं लखि नारी ज्ञान, करि राखो निरख यह।
वह ई रोग निदान, वहै वैद औषध वहै ॥३७६॥
भादौ अति सुख दैन, कही चंद गोविन्द सौ।
घन अरु तिय के नैन, दोऊ बरसे रैन दिन ॥३७७॥

छप्पय—

जदपि कुसंग सूँ लाभ, तदपि वह संग न कीजैं।
जदपि धनि होय निधन, तदपि घट प्रकृति न लीजैं॥
जदपि दान नहिं शक्ति, तदपि सनमान न खुट्टिय।
जदपि प्रीत उर घटै, तदपि मुख उपर न टुट्टिय॥
सुन कुयश दुबार किवाड़ दे, सुयश जमाल न मुक्कियैं।
जिय जाय जदपि भलपन करत, तऊ न भलपन चुक्कियैं॥३७८